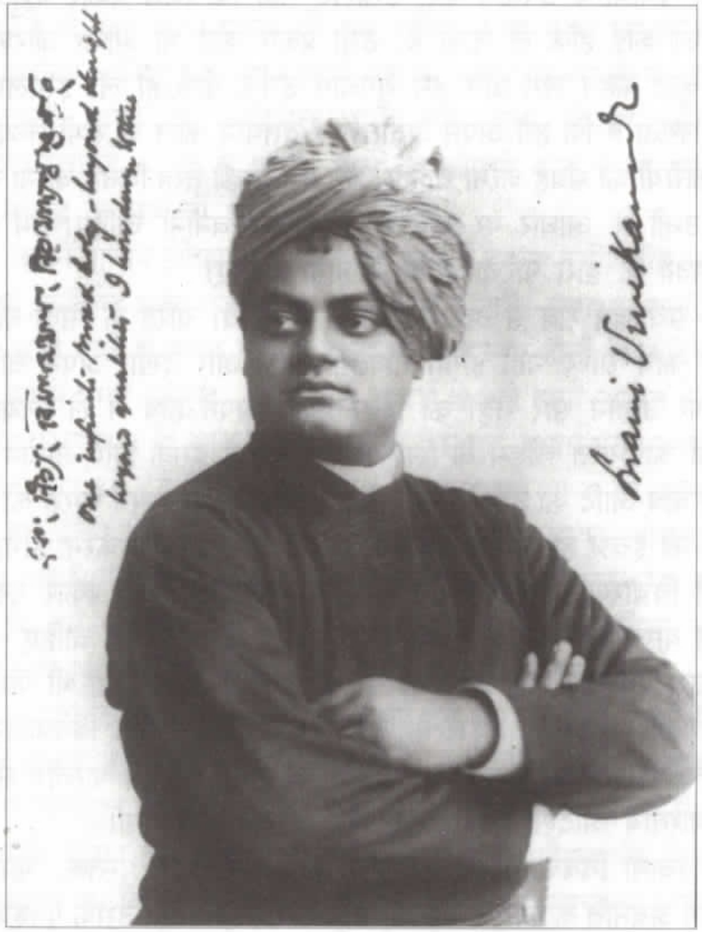

स्वामी विवेकानन्द

नया भारत गढ़ो

प्रथम अध्याय

हमारा राष्ट्र झोपड़ियों में बसता है

हमारा पवित्र भारतवर्ष धर्म एवं दर्शन की पुण्य-भूमि है। यहीं बड़े बड़े महात्माओं तथा ऋषियों का जन्म हुआ है, यही संन्यास एवं त्याग की भूमि है तथा यहीं – केवल यहीं – आदि काल से लेकर आज तक मनुष्य के लिए जीवन के सर्वोच्च आदर्श एवं मुक्ति का द्वार खुला हुआ है।[१]

प्रत्येक राष्ट्र की एक विशिष्टता होती है, अन्य सब बातें उसके बाद आती हैं। भारत की विशिष्टता धर्म है। समाज-सुधार और अन्य सब बातें गौण हैं।[२]

(हमारी) जाति अभी भी जीवित है, धुकधुकी चल रही है, केवल बेहोश हो गयी है। ... देश का प्राण धर्म है, भाषा धर्म है तथा भाव धर्म है। तुम्हारी राजनीति, समाजनीति, रास्ते की सफाई, प्लेग-निवारण, दुर्भिक्षपीड़ितों को अन्नदान आदि आदि चिरकाल से इस देश में जैसे हुआ है, वैसे ही होगा अर्थात् धर्म के द्वारा यदि होगा तो होगा अन्यथा नहीं। तुम्हारे रोने-चिल्लाने का कुछ भी असर न होगा।[३] अत: यदि तुम धर्म का परित्याग करने की अपनी चेष्टा में सफल हो जाओ और राजनीति, समाजनीति या किसी दूसरी चीज को अपनी जीवन-शक्ति का केन्द्र बनाओ, तो उसका फल यह होगा कि तुम एकबारगी नष्ट हो जाओगे।[४]

संसार के इतिहास का अनुशीलन करने से प्रतीत होता है कि प्राकृतिक नियमों के वश ब्राह्मण आदि चारों वर्ण क्रम से पृथ्वी का भोग करेंगे।[५] समाज का नेतृत्व विद्या-बल से प्राप्त हुआ हो, चाहे बाहु-बल से अथवा धन-बल से, पर उस शक्ति का आधार प्रजा ही है।[६]

जिनके रुधिर-स्राव से मनुष्यजाति की यह जो कुछ उन्नति हुई है, उनके गुणों का गान कौन करता है? लोकजयी धर्मवीर, रणवीर, काव्यवीर, सब की आँखों पर, सब के पूज्य हैं; परंतु जहाँ कोई नहीं देखता, जहाँ कोई एक वाह वाह भी नहीं करता, जहाँ सब लोग घृणा करते हैं, वहाँ वास करती है अपार सहिष्णुता, अनन्य प्रीति और निर्भिक कार्यकारिता; हमारे गरीब, घर-द्वार पर दिनरात मुँह बंद करके कर्तव्य करते जा रहे हैं; उसमें क्या वीरत्व नहीं है?[७]

ये जो किसान, मजदूर, मोची, मेहतर आदि हैं, इनकी कर्मशीलता और आत्मनिष्ठा तुममें से कइयों से कहीं अधिक है। ये लोग चिरकाल से चुपचाप काम करते जा रहे हैं, देश का धन-धान्य उत्पन्न कर रहे हैं, पर आपने मुँह से शिकायत नहीं करते।[८] माना कि उन्होंने तुम लोगों की तरह पुस्तकें नहीं पढ़ी हैं, तुम्हारी तरह कोट-कमीज पहनकर सभ्य बनना उन्होंने नहीं सीखा, पर इससे क्या होता है? वास्तव में वे ही राष्ट्र की रिढ़ हैं। यदि ये निम्न श्रेणियों के लोग अपना अपना काम करना बंद कर दें तो तुम लोगों को अन्न-वस्त्र मिलना कठिन हो जाय। कलकत्ते में यदि मेहतर लोग एक दिन के लिए काम बंद कर देते हैं तो 'हाय तोबा' मच जाती है। यदि तीन दिन वे काम बंद कर दें तो संक्रामक रोगों से शहर बरबाद हो जाय। श्रमिकों के काम बंद करने पर तुम्हें अन्न-वस्त्र नहीं मिल सकता। इन्हें ही तुम लोग नीच समझ रहे हो और अपने को शिक्षित मानकर अभिमान कर रहे हो![९]

इन लोगों ने सहस्त्र सहस्त्र वर्षों तक नीरव अत्याचार सहन किया है, – उससे पायी है अपूर्व सहिष्णुता। सनातन दुःख उठाया, जिससे पायी है अटल जीवनीशक्ति। ये लोग मुट्ठीभर सत्तू खाकर दुनिया उलट दे सकेंगे।

आधी रोटी मिली तो तीनों लोक में इतना तेज न अटेगा! ये रक्तबीज के प्राणों से युक्त हैं। और पाया है सदाचार-बल, जो तीनों लोक में नहीं है। इतनी शांति, इतनी प्रीति, इतना प्यार, बेजबान रहकर दिनरात इतना खटना और काम के वक्त सिंह का विक्रम![१०]

बड़ा काम आने पर बहुतेरे वीर हो जाते हैं; दस हजार आदमियों की वाहवाही के सामने कापुरुष भी सहज ही में प्राण दे देता है; घोर स्वार्थपर भी निष्काम हो जाता है; परंतु अत्यंत छोटेसे कर्म में भी सब के अज्ञात भाव से जो वैसी ही निःस्वार्थता, कर्तव्यपरायणता दिखाते हैं, वे ही धन्य हैं – वे तुम लोग हो – भारत के हमेशा के पैरों तले कुचले हुए श्रमजीवियो! तुम लोगों को मैं प्रणाम करता हूँ।[११]

हमारी जनता को पार्थिव वस्तुओं के बारे में बहुत कम ज्ञान है। हमारे जन बहुत अच्छे हैं, क्योंकि यहाँ दरिद्र होना अपराध नहीं है। हमारी जनता हिंसक नहीं है। अमेरिका और इँगलैंड में मैं बहुत बार केवल अपनी वेश-भूषा के कारण भीड़ों द्वारा प्रायः आक्रांत किया गया हूँ। पर भारत में मैंने ऐसी बात कभी नहीं सुनी कि भीड़ किसी मनुष्य की वेश-भूषा के कारण उसके पीछे पड़ गयी हो।[१२] पाश्चात्य देशों के गरीब तो निरे पशू हैं, उनकी तुलना में हमारे यहाँ के गरीब देवता हैं। इसीलिए हमारे यहाँ के गरीबों को ऊँचा उठाना अपेक्षाकृत सहज है।[१३] अन्य सभी बातों में हमारी जनता यूरोप की जनता की अपेक्षा कहीं अधिक सभ्य है।[१४] लोग कहते हैं कि हमारे देश का जनसमुदाय बड़ी स्थूल बुद्धि का है, वह किसी प्रकार की शिक्षा नहीं चाहता और संसार का किसी प्रकार का समाचार जानना नहीं चाहता। पहले मूर्खतावश मेरा भी झुकाव ऐसी ही धारणा की ओर था। अब मेरी धारणा है कि काल्पनिक गवेषणाओं एवं द्रुतगति से सारे भूमंडल की परिक्रमा कर डालनेवालों तथा जल्दबाजी में पर्यवेक्षण करनेवालों की लेखनी द्वारा लिखित पुस्तकों के पाठ की अपेक्षा स्वयं अनुभव प्राप्त करने से कहीं अधिक शिक्षा मिलती है। अनुभव के द्वारा यह शिक्षा मुझे मिली है कि हमारे देश का जनसमुदाय निर्बोध और मंद नहीं है, वह संसार का समाचार जानने

के लिए पृथ्वी के अन्य किसी स्थान के निवासी से कम उत्सुक और व्याकुल भी नहीं है।[१५]

ब्राह्मणों ने ही तो धर्मशास्त्रों पर एकाधिकार जमाकर विधि-निषेधों को अपने ही हाथ में रखा था और भारत की दूसरी जातियों को नीच कहकर उनके मन में विश्वास जमा दिया था कि वे वास्तव में नीच हैं। यदि किसी व्यक्ति को खाते, सोते, उठते, बैठते, हर समय कोई कहता रहे कि 'तू नीच है', 'तू नीच है' तो कुछ समय के पश्चात् उसकी यह धारणा हो जाती है कि 'मैं वास्तव में नीच हूँ।' इसे सम्मोहित (हिप्नोटाइज) करना कहते हैं।[१६]

मैं तो जाति-पाँति के मामलों में किसी भी वर्ग के प्रति कोई पक्षपात नहीं रखता, क्योंकि में जानता हूँ कि यह एक सामाजिक नियम है और गुण एवं कर्म के भेद पर आधारित है।[१७]

जात-पाँत की ही बात लीजिए। संस्कृत में 'जाति' का अर्थ है वर्ग या श्रेणी विशेष। जाति का मूल अर्थ था प्रत्येक व्यक्ति की अपनी प्रकृति को, अपने विशेषत्व को प्रकाशित करने की स्वाधीनता और यही अर्थ हजारों वर्षों तक प्रचलित भी रहा।[१८]

जैसे हर एक व्यक्ति में सत्त्व, रज और तम, तीनों गुण न्यूनाधिक अंश में वर्तमान हैं, उसी प्रकार ब्राह्मण एवं क्षत्रिय आदि के गुण भी सब मनुष्यों में जन्मजात ही न्यूनाधिक मात्रा में विद्यमान रहते हैं। समय समय पर उनमें से एक न एक गुण अधिक प्रबल होकर, उनके कार्यकलापों में प्रकट होता रहता है। आप मनुष्य का दैनिक जीवनक्रम लें – जब वह अर्थ प्राप्ति के लिए किसी की सेवा करता है, तो वह शूद्र होता है; जब वह स्वयं अपने लाभ के लिए कोई क्रय-विक्रय करता है, तो उसकी वैश्य संज्ञा हो जाती है; जब वह अन्याय के विरुद्ध अस्त्र उठाता है, तो उसमें क्षात्र भाव सर्वोपरि होता है; और जब वह ईश्वरचिंतन में लगता है, भगवान का कीर्तन करता है, तो ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर लेता है। यह स्पष्ट है कि मनुष्य के लिए एक जाति से दूसरी जाति में चला जाना संभव है। यदि नहीं, तो

विश्वामित्र ब्राह्मण कैसे बन सके?[१९] ... ब्राह्मण का पुत्र सर्वदा ब्राह्मण ही नहीं होता यद्यपि उसके ब्राह्मण होने की संभावना अवश्य होती है।[२०]

शिक्षा और अधिकार के तारतम्य के अनुसार सभ्यता सीखने की सीढ़ी थी – वर्णविभाग। यूरोप में बलवानों की जय और निर्बलों की मृत्यु होती है। भारत में प्रत्येक सामाजिक नियम दुर्बलों की रक्षा करने के लिए ही बनाया गया है।[२१]

विभिन्न श्रेणियों में विभक्त होना ही समाज का स्वभाव है। पर रहेगा क्या नहीं? – विशेष अधिकारों का अस्तित्व न रह जायगा। जातिविभाग प्राकृतिक नियम है। सामाजिक जीवन में एक विशेष काम मैं कर सकता हूँ, तो दूसरा काम तुम कर सकते हो। तुम एक देश का शासन कर सकते हो तो में एक पुराने जूते की मरम्मत कर सकता हूँ, किंतु इस कारण तुम मुझसे बड़े नहीं हो सकते – क्या तुम मेरे जूते की मरम्मत कर सकते हो? ... तुम वेदपाठ में निपुण हो। यह कोई कारण नहीं कि तुम इस विशेषता के लिए मेरे सिर पर पाँव रखो। तुम यदि हत्या भी करो तो तुम्हारी प्रशंसा और मुझे एक सेब चुराने पर ही फाँसी पर लटकना हो, ऐसा नहीं हो सकता। इसको समाप्त करना ही होगा।[२२] यदि मछुआ को तुम वेदांत सिखलाओगे तो वह कहेगा, हम और तुम दोनों बराबर हैं। तुम दार्शनिक हो, मैं मछुआ; पर इससे क्या? तुम्हारे भीतर जो ईश्वर है, वही मुझमें भी है। हम यही चाहते हैं कि किसी को कोई विशेष अधिकार प्राप्त न हो, और प्रत्येक मनुष्य की उन्नति के लिए समान सुभीते हों! सब लोगों को उनके भीतर स्थित ब्रह्मत्वसंबंधी शिक्षा दो। प्रत्येक व्यक्ति अपनी मुक्ति के लिए स्वयं चेष्टा करेगा।[२३]

यह एक विशेष रूप से ध्यान देने योग्य बात है कि प्राचीन भारत ने जिन दो सर्वश्रेष्ठ पुरुषों को जन्म दिया था, वे दोनों ही क्षत्रिय हैं – वे थे कृष्ण और बुद्ध। और यह उससे भी अधिक ध्यान देने योग्य बात है कि इन दोनों ही देवमानवों ने लिंग और जातिभेद को न मानकर सब के लिए ज्ञान का द्वार उन्मुक्त कर दिया था।[२४]

जाति-व्यवस्था सर्वदा बड़ी लचीली रही है, कभी कभी तो इतनी लचीली कि सांस्कृतिक दृष्टि से अति निम्नस्तरीय लोगों के स्वस्थ अभ्युदय की उसमें संभावना ही नहीं रही। कम से कम सैद्धांतिक दृष्टि से जाति-व्यवस्था ने समूचे भारत को संपत्ति के और तलवार के प्रभुत्व में न ले जाकर बुद्धि के – आध्यात्मिकता द्वारा परिशुद्ध और नियंत्रित बुद्धि के – निर्देशन में रखा। ... अन्य प्रत्येक देश में सर्वोच्च सम्मान क्षत्रिय को – जिसके हाथ में तलवार है – दिया गया है। भारत में सर्वोच्च प्रतिष्ठा शांति के उपासक को – श्रमण, ब्राह्मण, भगवत्पुरुष को – दी गयी है। – अन्य प्रत्येक देश का जातिविधान एक व्यक्ति को – स्त्री हो या पुरुष – पर्याप्त इकाई मानता है। संपत्ति, शक्ति, बुद्धि अथवा सौंदर्य किसी भी व्यक्ति के लिए अपने जन्म का जातीय स्तर त्यागकर कहीं भी ऊपर उठ जाने के लिए पर्याप्त साधन होते हैं। ... यहाँ भी व्यक्ति को इस बात का पूरा अवसर है कि एक निम्न जाति से उठकर उच्च या उच्चतम जाति तक पहुँच जाय। केवल एक शर्त है, परमार्थवाद के जन्मदाता इस देश में व्यक्ति को विवश किया गया है कि वह अपनी अपनी समूची जाति को अपने साथ ऊपर उठाये।[२५]

जाति वास्तव में क्या है, यह लाखों में से एक भी नहीं समझता। संसार में एक भी देश ऐसा नहीं है, जहाँ जाति-भेद न हो। भारत में हम जाति के द्वारा ऐसी स्थिती में पहुँचते हैं जहाँ जाति नहीं रह जाती। जाति-प्रथा सदा इसी सिद्धांत पर आधारित है। भारत में योजना है कि प्रत्येक मनुष्य को ब्राह्मण बनाया जाय; ब्राह्मण मानवता का आदर्श है। यदि आप भारत का इतिहास पढ़ेंगे, तो पायेंगे कि सदा नीचे वर्गों को ऊपर उठाने का प्रयत्न किया गया है।[२६]

जाति-भेद एक सामाजिक प्रथा मात्र है और हमारे बड़े बड़े आचार्यों ने उसे तोड़ने के प्रयत्न किये हैं। बौद्ध धर्म से लेकर सभी संप्रदायों ने जाति-भेद के विरुद्ध प्रचार किया है, परंतु ऐसा प्रचार जितना ही बढ़ता गया, जाति-भेद की शृंखला उतनी ही दृढ़ होती गयी। जाति-भेद की उत्पत्ति भारत

की राजनीतिक संस्थाओं से हुई है। वह तो वंशपरंपरागत व्यवसायों का समवाय (trade guild) मात्र है।[२७]

हमारा जाति-भेद और हमारी प्रथाएँ ... राष्ट्र के रूप में हमारी रक्षा के लिए आवश्यक थीं। और अब आत्मरक्षा के लिए इनकी जरूरत न रह जायगी तब स्वभावतः ये नष्ट हो जायँगी।[२८]

यूरोप और अमेरिका में जिस तरह का जाति-भेद है भारतीय जाति-भेद उससे अच्छा है। ... यदि जाति न होती, तो आज आप कहाँ होते? यदि जाति न होती, तो आपका ज्ञान-भंडार और दूसरी वस्तुएँ कहाँ होतीं? यदि जाति न होती, तो आज यूरोपवालों के अध्ययन करने के लिए कुछ भी न बचा होता। मुसलमानों ने सब कुछ नष्ट कर दिया होता। वह कौनसा स्थल है, जहाँ हम भारतीय समाज को स्थिर खड़ा पाते हैं? यह सदा, गतिमान रहा है। कभी कभी, जैसे कि विदेशी आक्रमणों के समय में, यह गति मंद रही है, पर दूसरे अवसरों पर अधिक तेज रही है। मैं अपने देशवासियों से यही कहता हूँ। मैं उन्हें दोष नहीं देता। मैं उनके अतीत में देखता हूँ कि ऐसी परिस्थितियों में कोई भी देश इससे अधिक शानदार काम नहीं कर सकता था। मैं उन्हें बताता हूँ कि आपने बहुत अच्छा काम किया है। और उनसे केवल और अच्छा करने के लिए कहता हूँ।[२९]

जाति निरंतर बदल रही है, अनुष्ठान बदल रहे हैं, यही दशा विधियों की है। यह केवल सार है, सिद्धांत है, जो नहीं बदलता।[३०]

जाति-व्यवस्था का नाश नहीं होना चाहिए; उसे केवल समय समय पर परिस्थितियों के अनुकूल बनाया जाना चाहिए। हमारी पुरानी व्यवस्था के भीतर इतनी जीवनी-शक्ति है कि उससे दो लाख नयी व्यवस्थाओं का निर्माण किया जा सकता है। जाति-व्यवस्था को मिटाने की बात करना कोरी बुद्धिहीनता है। नयी रीति यह है कि पुरातन का विकास हो।[३१]

संसार हमारे देश का अत्यंत ऋणी है। यदि भिन्न भिन्न देशों की पारस्परिक तुलना की जाय तो मालूम होगा कि सारा संसार सहिष्णु एवं निरीह भारत का जितना ऋणी है उतना और किसी देश का नहीं। ... पुराने

समय में और आजकल भी बहुतसे अनोखे तत्त्व एक जाति से दूसरी जाति में पहुँचे हैं, और यह भी ठीक है कि किसी किसी राष्ट्र की गतिशील जीवनतरंगों ने महान् शक्तिशाली सत्य के बीजों को चारों ओर बिखेरा है। परंतु भाइयो! तुम यह भी देख पाओगे कि ऐसे सत्य का प्रचार हुआ है – रणभेरी के निर्घोष तथा रण-सज्जा से सज्जित सेना-समूह की सहायता से। बिना रक्त प्रवाह में सिक्त हुए, बिना लाखों स्त्री-पुरुषों के खून की नदी में स्नान किये, कोई भी नया भाव आगे नहीं बढ़ा। ... प्रधानत: इसी उपाय द्वारा अन्यान्य देशों ने संसार को शिक्षा दी है; परंतु इस उपाय का अवलंबन किये बिना ही भारत हजारों वर्षों से शांतिपूर्वक जीवित रहा है। ... उससे भी पहले, जिस समय का इतिहास में कोई लेखा नहीं है, जिस सुदूर धुँधले अतीत की ओर झाँकने का साहस परंपराओं को भी नहीं होता, उस काल से लेकर अब तक न जाने कितने ही भाव एक के बाद एक भारत से प्रसृत हुए हैं, पर उनका प्रत्येक शब्द आगे शांति तथा पीछे आशीर्वाद के साथ कहा गया है।[३२]

अतएव हिंदू लोग अतीत का जितना ही अध्ययन करेंगे, उनका भविष्य उतना ही उज्ज्वल होगा; और जो कोई इस अतीत के बारे में प्रत्येक व्यक्ति को विज्ञ करने की चेष्टा कर रहा है, वह स्वजाति का परम हितकारी है। भारत की अवनति इसलिए नहीं हुई कि हमारे पूर्व पुरुषों के नियम एवं आचार-व्यवहार खराब थे, वरन् उसकी अवनति का कारण यह था कि उन नियमों और आचार-व्यवहारों को उनकी न्यायसंगत परिणति तक नहीं ले जाने दिया गया।[३३]

□□□

द्वितीय अध्याय

हमारा राष्ट्रीय महापाप

मैं समझता हूँ कि हमारा सब से बड़ा राष्ट्रीय पाप ज़नसमुदाय की उपेक्षा है, और वह भी हमारे पतन का एक कारण है।[१] भारत में दो बड़ी बुरी बातें हैं। स्त्रियों का तिरस्कार और गरीबों को जाति-भेद द्वारा पीसना।[२]

तुम अपने देश के लोगों की ओर एक बार ध्यान से देखो तो, मुँह पर मलिनता की छाया, कलेजे में न साहस, न उल्लास, पेट बड़ा, हाथ-पैरों में शक्ति नहीं; डरपोक और कायर![३] यथार्थ राष्ट्र जो झोपड़ियों में निवास करता है, अपना पौरुष विस्मृत कर बैठा है, अपना व्यक्तित्व खो चुका है।[४] इस भारतभूमि में जनसमुदाय को कभी भी अपनी आत्म-स्वत्व-बुद्धि को उद्दीप्त करने का मौका नहीं दिया गया।[५] हिंदू, मुसलमान या ईसाई के पैरों से रौंदे वे लोग यह समझ बैठे हैं कि जिस किसी के पास पैसा हो, वे उसी के पैरों से कुचले जाने के लिए ही पैदा हुए हैं।[६]

वे लोग जो किसान हैं, वे कोरी, जुलाहे जो भारत के नगण्य मनुष्य हैं, विजाति-विजित स्वजाति-निंदित छोटी छोटी जातियाँ हैं, वही लगातार चुपचाप काम करतीं जा रही हैं, अपने परिश्रम का कुछ भी नहीं पा रही हैं।[७]

फिर जिनके शारीरिक परिश्रम पर ही ब्राह्मणों का आधिपत्य, क्षत्रियों का ऐश्वर्य और वैश्यों का धन-धान्य निर्भर है, वे कहाँ हैं? समाज का मुख्य अंग होकर भी जो लोग सदा सब देशों में 'जघन्यप्रभवो हि सः' कहकर पुकारे जाते हैं, उनका क्या हाल है?[८] हे भारत के श्रमजीवियो, तुम्हारे नीरव, सदा ही निंदित हुए परिश्रम के फलस्वरूप बाबिल, ईरान, अलेकजंद्रिया, ग्रीस, रोम, वेनिस, जिनेवा, बगदाद, समरकंद, स्पेन

पोर्तुगाल, फ्रांसीसी, दिनेमार, डच और अंग्रेजों का क्रमान्वय से आधिपत्य हुआ और उनको ऐश्वर्य मिला है। और तुम? कौन सोचता है इस बात को![९]

जीवन-संग्राम में सदा लगे रहने के कारण निम्न श्रेणी के लोगों में अभी तक ज्ञान का विकास नहीं हुआ। ये लोग अभी तक मानवबुद्धि द्वारा परिचालित यंत्र की तरह एक ही भाव से काम करते आये हैं, और बुद्धिमान चतुर व्यक्ति इनके परिश्रम तथा कार्य का सार तथा निचोड़ लेते रहे हैं। सभी देशों में इसी प्रकार हुआ है। परंतु अब वे दिन नहीं रहे। निम्न श्रेणी के लोग धीरे धीरे यह बात समझ रहे हैं और इसके विरुद्ध सब सम्मिलित रूप से खड़े होकर अपने समुचित अधिकार प्राप्त करने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ हो गये हैं। यूरोप और अमेरिका में निम्नजातिय लोगों ने जागृत होकर इस दिशा में प्रयत्न भी प्रारंभ कर दिया है, और आज भारत में भी इसके लक्षण दृष्टिगोचर हो रहे हैं। निम्न श्रेणी के व्यक्तियों द्वारा आजकल जो इतनी हड़तालें हो रही हैं, वे इनकी इसी जागृति का प्रमाण है। अब हजार प्रयत्न करके भी उच्च जाति के लोग निम्न श्रेणियों को अधिक दबाकर नहीं रख सकेंगे। अब निम्न श्रेणियों के न्यायसगत अधिकार की प्राप्ति में सहायता करने में ही उच्च श्रेणियों का भला है।[१०]

जिनका ऐशो-आराम में लालन-पालन और शिक्षा लाखों पददलित परिश्रमी गरीबों के हृदय के रक्त से हो रही है और फिर भी जो उनकी ओर ध्यान नहीं देते, उन्हें मैं विश्वासघातक कहता हूँ। इतिहास में कहाँ और किस काल में आपके धनवान पुरुषों ने, कुलीन पुरुषों ने, पुरोहितों ने और राजाओं ने गरीबों की ओर ध्यान दिया था – वे गरीब, जिन्हें कोल्हू के बैल की तरह पेलने से ही उनकी शक्ति संचित हुई थी।[११]

भारतवर्ष के सभी अनर्थों की जड़ है – जनसाधारण की गरीबी। ... पुरोहिती शक्ति और विदेश विजेतागण सदियों से उन्हें कुचलते रहे हैं, जिसके फलस्वरूप भारत के गरीब बेचारे यह तक भूल गये हैं कि वे भी मनुष्य हैं।[१२] हमारे अभिजात पूर्वज साधारण जनसमुदाय को जमाने से पैरों तले कुचलते रहे। इसके फलस्वरूप वे बेचारे एकदम असहाय हो गये। यहाँ तक कि वे अपने आपको मनुष्य मानना भी भूल गये।[१३] भारत के सत्यानाश का मुख्य कारण यही है कि देश की संपूर्ण विद्या-बुद्धि राज-शासन और दंभ के बल से मुट्ठी भर लोगों के एकाधिकार में रखी गयी है।[१४] भारत के दरिद्रों, पतितों और पापियों का कोई साथी नहीं, कोई सहायता देनेवाला नहीं – वे कितनी ही कोशिश क्यों न करें, उनकी उन्नति का कोई उपाय नहीं। वे दिन पर दिन डूबते जा रहे हैं। क्रूर समाज उन पर जो लगातार चोटें कर रहा है, उसका अनुभव तो वे खूब कर रहे हैं, पर वे जानते नहीं कि वे चोटें कहाँ से आ रही हैं।[१५] सदियों तक वे धनी-मानियों की आज्ञा सिर-आँखों पर रखकर केवल लकड़ी काटते और पानी भरते रहे हैं। उनकी यह धारणा बन गयी कि मानो उन्होंने गुलाम के रूप में ही जन्म लिया है।[१६] हमारे इस देश में, इस वेदांत की जन्मभूमि में हमारा जनसाधारण शत शत वर्षों से संमोहित बनाकर इस तरह की हीन अवस्था में डाल दिया गया है। उनके स्पर्श में अपवित्रता समायी है, उनके साथ बैठने से छूत समा जाती है। उनसे कहा जा रहा है, निराशा के अंधकार में तुम्हारा जन्म हुआ है, सदा तुम इस अँधेरे में पड़े रहो। और उसका परिणाम यह हुआ कि वे लगातार डूबते चले जा रहे हैं, गहरे अँधेरे से और गहरे अँधेरे में डूबते चले जा रहे हैं। अंत में मनुष्य जितनी निकृष्ट अवस्था तक पहुँच सकता है, वहाँ तक वे पहुँच चुके हैं।[१७]

क्या कारण है कि संसार के सब देशों में हमारा देश ही सब से अधिक बलहीन और पिछड़ा हुआ है? इसका कारण यही है कि वहाँ शक्ति का निरादर होता है।[१८] स्मृति आदि लिखकर, नियम-नीति में आबद्ध करके इस देश के पुरुषों ने स्त्रियों को एकदम बच्चा पैदा करने की मशीन बना डाला है।[१९] फिर अपने देश की दस वर्ष की उम्र में बच्चों को जन्म देनेवाली बालिकाएँ!!! प्रभु, मैं अब समझ रहा हूँ। हे भाई, **'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः'** (जहाँ नारियों की पूजा होती है, वहाँ देवता प्रसन्न रहते हैं) – वृद्ध मनु ने कहा है। हम महापापी हैं; स्त्रियों को 'घृणित किड़ा',

'नरक का द्वार' इत्यादि कहकर हम अध:पतित हुए हैं। बाप रे बाप! कैसा आकाश-पाताल का अंतर है। **'याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधात्'।** (जहाँ जैसा उचित हो ईश्वर वहाँ वैसा कर्मफल का विधान करते हैं। – ईशोपनिषद्) क्या प्रभु झूठी गप्प से भूलनेवाला है? प्रभु ने कहा है, **'त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी'** (तुम्हीं स्त्री हो और तुम्हीं पुरुष; तुम्हीं क्वाँरे हो और तुम्हीं क्वाँरी। – श्वेताश्वतरोपनिषद्) इत्यादि और हम कह रहे हैं, **'दूरमपसर रे चाण्डाल'** (रे चाण्डाल, दूर हट), **'केनैषा निर्मिता नारी मोहिनी'** (किसने इस मोहिनी नारी को बनाया है?) इत्यादि।[२०]

यह जाति डूब रही है। लाखों प्राणियों का शाप हमारे सिर पर है। सदा ही अजस्र जलधारवाली नदी के समीप रहने पर भी तृष्णा के समय पीने के लिए हमने जिन्हें नाबदान का पानी दिया, उन अगणित लाखों मनुष्यों का, जिनके सामने भोजन के भांडार रहते हुए भी जिन्हें हमने भूखों मार डाला, जिन्हें हमने अद्वैतवाद का तत्त्व सुनाया पर जिनसे हमने तीव्र घृणा की, जिनके विरोध में हमने लोकाचार का आविष्कार किया, जिनसे जबानी तो यह कहा कि सब बराबर हैं, सब वही एक ब्रह्म है, परंतु इस उक्ति को काम में लाने का तिलमात्र भी प्रयत्न नहीं किया।[२१]

पृथ्वी पर ऐसा कोई धर्म नहीं है, जो हिंदू धर्म के समान इतने उच्च स्वर से मानवता के गौरव का उपदेश करता हो, और पृथ्वी पर ऐसा कोई धर्म नहीं है, जो हिंदू धर्म के समान गरीबों और नीच जातिवालों का गला ऐसी क्रूरता से घोंटता हो।[२२] अब हमारा धर्म किसमें रह गया है? केवल छुआछूत में – मुझे छुओ नहीं, छुओ नहीं। हम उन्हें छूते भी नहीं और उन्हें 'दूर' 'दूर' कहकर भगा देते हैं। क्या हम मनुष्य हैं?[२३] हे भगवन्, कब एक मनुष्य दूसरे से भाईचारे का बर्ताव करना सीखेगा?[२४] धर्म में जाति-भेद नहीं है; जाति तो एक सामाजिक संस्था मात्र है।[२५] अत: धर्म का कोई दोष नहीं, दोष मनुष्यों का है।[२६]

कर्मकांडों से ऊबकर एवं दार्शनिकों की जटिल व्याख्या से विभ्रांत होकर लोग अधिकाधिक संख्या में जड़वादियों से जा मिले। यही जाति-

समस्या का सूत्रपात था एवं भारत में कर्मकांड, दर्शन तथा जड़वाद के मध्य उस त्रिभुजात्मक संग्राम का मूल भी यही था, जिसका समाधान हमारे इस युग तक संभव नहीं हो पाया है।[२७]

अवश्य ही जाति-धर्म उत्सन्न हो गया है। अतएव जिसे तुम लोग जाति-धर्म कहते हो, वह ठीक उसका उल्टा है। पहले अपने पुराण और शास्त्रों को अच्छी तरह पढ़ो तब समझ में आयेगा कि शास्त्रों में जिसे जाति-धर्म कहा गया है, उसका सर्वथा लोप हो गया है।[२८]

भारत के अध:पतन का कारण क्या था? जातिसंबंधी इस भाव का त्याग। जैसे गीता कहती है – जाति नष्ट हुई कि संसार भी नष्ट हुआ। ... आजकल का वर्ण-विभाग यथार्थ में जाति नहीं है, बल्कि जाति की प्रगति में वह एक रुकावट ही है। वास्तव में इसने सच्ची जाति अथवा विविधता की स्वच्छंद गति को रोक दिया है। ... प्रत्येक हिंदू जानता है कि किसी लड़के या लड़की के जन्म लेते ही ज्योतिषी लोग उसके जाति-निर्वाचन की चेष्टा करते हैं। वही असली जाति है – हर एक व्यक्ति का व्यक्तित्व, और ज्योतिष इसे स्वीकार करता है। और हम लोग केवल तभी उठ सकते हैं जब इसे फिर से पूरी स्वतंत्रता दें। याद रखें कि इस विविधता का अर्थ वैषम्य नहीं है, और न कोई विशेषाधिकार ही।[२९] प्रत्येक दृढ़मूल अभिजात वर्ग अथवा विशेष अधिकारप्राप्त संप्रदाय जाति का घातक है – वह जाति नहीं है। 'जाति' को स्वतंत्रता दो; जाति की राह से प्रत्येक रोड़े को हटा दो, बस, हमारा उत्थान होगा।[३०]

जो लोग कहते हैं कि अशिक्षित या गरीब मनुष्यों को स्वाधीनता देने से अर्थात् उनको अपने शरीर और धन आदि पर पूरा अधिकार देने, तथा उनके वंशजों को धनी और ऊँचे दर्जे के आदमियों के वंशजों की भाँति ज्ञान प्राप्त करने एवं अपनी दशा सुधारने में समान सुविधा देने से वे उन्मार्गगामी बन जायेंगे, तो क्या वे समाज की भलाई के लिए ऐसा कहते हैं अथवा स्वार्थ से अंधे होकर?[३१]

पुरोहित-प्रपंच ही भारत की अधोगति का मूल कारण है। मनुष्य अपने

भाई को पतित बनाकर क्या स्वयं पतित होने से बच सकता है? ... क्या कोई व्यक्ति स्वयं का किसी प्रकार अनिष्ट किये बिना दूसरों को हानि पहुँचा सकता है? ब्राह्मण और क्षत्रियों के ये ही अत्याचार चक्रवृद्धि ब्याज के सहित अब स्वयं के सिर पर पतित हुए हैं, एवं यह हजारों वर्ष की पराधीनता और अवनति निश्चय ही उन्हीं के कर्मों के अनिवार्य फल का भोग है।[३२]

जिन्होंने गरीबों का रक्त चूसा, जिनकी शिक्षा उनके धन से हुई, जिनकी शक्ति उनकी दरिद्रता पर बनी, वे अपनी बारी में सैकड़ों और हजारों की गिनती में दास बनाकर बेचे गये, उनकी संपत्ति हजार वर्षों तक लुटती रही, और उनकी स्त्रियाँ और कन्याएँ अपमानित की गयीं। क्या आप समझते हैं कि यह अकारण ही हुआ?[३३]

नीच जाति के लोगों से हमारी जनता बनी है, युग युग से ऊँची जातिवालों के अत्याचार से, उठते-बैठते ठोकरें खाकर एकदम वे मनुष्यत्व खो बैठे हैं और पेशेवर भिखमंगों जैसे हो गये हैं।[३४] वे हमारी शिक्षा के लिए धन देते हैं, हमारे मंदिर बनाते हैं, और बदले में ठोकरें पाते हैं।[३५]

अगर हमारे देश में कोई नीच जाति में जन्म लेता है, तो वह हमेशा के लिए गया-बीता समझा जाता है, उसके लिए कोई आशा-भरोसा नहीं।[३६] आइए, देखिए तो सही, ... त्रिवांकुर में जहाँ पुरोहितों के अत्याचार भारतवर्ष भर में सब से अधिक है, जहाँ एक एक अंगुल जमीन के मालिक ब्राह्मण है ... वहाँ लगभग चौथाई जनसंख्या ईसाई हो गयी है![३७] यह देखो न – हिंदुओं की सहानुभूति न पाकर मद्रास प्रांत में हजारों पेरिया ईसाई बने जा रहे हैं, पर ऐसा न समझना कि वे केवल पेट के लिए ईसाई बनते हैं। असल में हमारी सहानुभूति न पाने के कारण वे ईसाई बनते हैं।[३८]

भारत के गरीबों में इतने मुसलमान क्यों हैं? यह सब मिथ्या बकबाद है कि तलवार की धार पर उन्होंने धर्म बदला। ... जमींदारों और ... पुरोहितों से अपना पिंड छुड़ाने के लिए ही उन्होंने ऐसा किया, और फलत: आप देखेंगे कि बंगाल में जहाँ जमींदार अधिक हैं, वहाँ हिंदुओं से अधिक मुसलमान किसान हैं।[३९]

भंगियों और चांडालों को उनकी वर्तमान हीन दशा में किसने पहुँचाया?[४०] इसके लिए उत्तरदायी कौन है? मेरा मन बार बार यह जवाब देता है कि इसके लिए अंग्रेज उत्तरदायी नहीं हैं; बल्कि अपनी इस दुरवस्था के लिए, अपनी इस अवनति और इन सारे दु:ख-कष्टों के लिए, एकमात्र हमीं उत्तरदायी हैं – हमारे सिवा इन बातों के लिए और कोई जिम्मेदार नहीं हो सकता।[४१] दोष उनका है, जो ढोंगी और दंभी हैं, जो 'पारमार्थिक' और 'व्यावहारिक' सिद्धांतों के रूप में अनेक प्रकार के अत्याचार के अस्त्रों का निर्माण करते हैं।[४२]

यह रोना-धोना मचा है कि हम बड़े गरीब हैं, परंतु गरीबों की सहायता के लिए कितनी दान-शील संस्थाएँ हैं? भारत के लाख लाख अनाथों के लिए कितने लोग रोते हैं? हे भगवान! क्या हम मनुष्य हैं? तुम लोगों के घरों के चतुर्दिक् जो पशुवत् भंगी-डोम हैं, उनकी उन्नति के लिए तुम क्या कर रहे हो? उनके मुख में एक ग्रास अन्न देने के लिए क्या करते हो?[४३]

तोते के समान बातें करना हमारा अभ्यास हो गया है – आचरण में हम बहुत पिछड़े हुए हैं। इसका क्या कारण है? शारीरिक दौर्बल्य।[४४] यह शारीरिक दुर्बलता कम से कम हमारे एक तिहाई दु:खों का कारण है। हम आलसी हैं। हम कार्य नहीं कर सकते; हम पारस्परिक एकता स्थापित नहीं कर सकते; हम एक दूसरे से प्रेम नहीं करते, हम बड़े स्वार्थी हैं, हम तीन मनुष्य एकत्र होते ही एक दूसरे से घृणा करते हैं, ईर्ष्या करते हैं।[४५]

अपने राष्ट्र में organization (संगठित होकर कार्यसंपादन करने) की शक्ति का एकदम अभाव है। वही अभाव सब अनर्थों का मूल है। मिलजुलकर कार्य करने के लिए कोई भी तैयार नहीं है। organization के लिए सब से पहले obedience (आज्ञापालन) की आवश्यकता है।[४६]

हमारे दो दोष बड़े ही प्रबल हैं; पहला दोष हमारी दुर्बलता है, दूसरा है घृणा करना, हृदयहीनता। लाखों मतमतांतरों की बात कह सकते हो,

करोड़ों संप्रदाय संगठित कर सकते हो, परंतु जब तक उनके दु:ख का अपने हृदय में अनुभव नहीं करते, वैदिक उपदेशों के अनुसार जब तक स्वयं नहीं समझते कि वे तुम्हारे ही शरीर के अंग हैं, जब तक तुम और वे – धनी और दरिद्र, साधु और असाधु सभी उसी एक अनंत पूर्ण के, जिसे तुम ब्रह्म कहते हो, अंश नहीं हो जाते, तब तक कुछ न होगा।[४७]

□□□

तृतीय अध्याय

जनजागरण

तुम्हारे देश का जनसाधारण मानो एक सोया हुआ तिमिंगल* है।[१] सदाचारसंबंधी जिनकी उच्च अभिलाषा मर चुकी है, भविष्य की उन्नति के लिए जो बिलकुल चेष्टा नहीं करते और भलाई करनेवाले को धर दबाने में जो हमेशा तत्पर हैं – ऐसे मृत जड़पिंडों के भीतर क्या तुम प्राणसंचार कर सकते हो? क्या तुम उस वैद्य की जगह ले सकते हो, जो लातें मारते हुए उद्दंड बच्चे के गले में दवाई डालने की कोशिश करता हो?[२]

मैंने जापान में सुना कि वहाँ की लड़कियों का यह विश्वास है कि यदि उनकी गुड़ियों को हृदय से प्यार किया जाय तो वे जीवित हो उठेंगी। ... मेरा भी विश्वास है कि यदि हतश्री अभागे, निर्बुद्ध, पददलित, चिरबुभुक्षित, झगड़ालू और ईर्षालू भारतवासियों को भी कोई हृदय से प्यार करने लगे तो भारत पुनः जागृत हो जायगा।[३]

हमने राष्ट्र की हैसियत से अपना व्यक्तिभाव खो दिया है और यही सारी खराबी का कारण है। हमे राष्ट्र को उसके खोये हुए व्यक्तिभाव को वापस लाना है और जनसमुदाय को उठाना है।[४] भारत को उठाना होगा, गरीबों को भोजन देना होगा, शिक्षा का विस्तार करना होगा और पुरोहित-प्रपंच की बुराइयों का निराकरण करना होगा। ... सब के लिए अधिक अन्न और सब को अधिकाधिक सुविधाएँ मिलती रहें।[५]

पहले कूर्म अवतार की पूजा करनी चाहिए। पेट है वह कूर्म। इसे पहले ठंडा किये बिना धर्म-कर्म की बात कोई ग्रहण नहीं करेगा। देखते नहीं,

---

* एक विशालकाय समुद्री जीव.

पेट की चिंता से भारत बेचैन है। ... धर्म की बात सुनाना हो तो पहले इस देश के लोगों के पेट की चिंता को दूर करना होगा। नहीं तो केवल व्याख्यान देने से विशेष लाभ न होगा।[६] पहले रोटी और तब धर्म चाहिए। गरीब बेचारे भूखों मर रहे हैं, और हम उन्हें आवश्यकता से अधिक धर्मोपदेश दे रहे हैं! मतमतांतरों से पेट नहीं भरता।[७]

आधी सदी से समाज-सुधार की धूम मच रही है। मैंने दस वर्षों तक भारत के विभिन्न स्थानों में घूमकर देखा कि देश में समाज-सुधारक संस्थाओं की बाढ़ सी आयी है। परंतु जिनका रक्त शोषण करके हमारे 'भद्र लोगों' ने अपना यह खिताब प्राप्त किया और कर रहे हैं, उन बेचारों के लिए एक भी संस्था नजर न आयी![८] यदि हम भारत को पुनर्जीवित करना चाहते हैं, तो हमें उनके लिए काम करना होगा।[९] हम कितनी ही राजनीति बरतें, उससे उस समय तक कोई लाभ नहीं होगा, जब तक कि भारत का जनसमुदाय एक बार फिर सुशिक्षित, सुपोषित और सुपालित नहीं होता।[१०]

याद रखो की राष्ट्र झोपड़ी में बसा हुआ है; परंतु शोक! उन लोगों के लिए कभी किसी ने कुछ किया नहीं। ... राष्ट्र की भावी उन्नति विधवाओं को अधिकाधिक पति मिलने पर निर्भर नहीं, वरन् 'आम जनता की अवस्था' पर निर्भर है। क्या तुम जनता की उन्नति कर सकते हो? क्या उनका खोया हुआ व्यक्तित्व, बिना उनकी स्वाभाविक आध्यात्मिक वृत्ति नष्ट किये, उन्हें वापस दिला सकते हो? ... यह काम करना है और हम इसे करेंगे ही।[११]

जाति तो व्यक्तियों की केवल समष्टि है।[१२] शिक्षा के द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को उपयुक्त बनाने के सिवाय मेरी और कोई उच्चाकांक्षा नहीं है।[१३] अपनी चिंता हमें स्वयं ही करनी है। इतना तो हम कर ही सकते हैं। ... क्योंकि दुनिया तभी पवित्र और अच्छी हो सकती है, जब हम स्वयं पवित्र और अच्छे हों। वह है कार्य और हम हैं उसके कारण। इसलिए आओ, हम अपने आपको पवित्र बना लें! आओ, हम अपने आपको पूर्ण बना लें![१४]

वर्तमान दशा से स्त्रियों का प्रथम उद्धार करना होगा। सर्वसाधारण को जगाना होगा; तभी तो भारत का कल्याण होगा।[१५]

सुधारकों से मैं कहूँगा कि मैं स्वयं उनसे कहीं बढ़कर सुधारक हूँ। वे लोग केवल इधर-उधर थोड़ा सुधार करना चाहते हैं। और मैं चाहता हूँ आमूल सुधार। हम लोगों का मतभेद है केवल सुधार की प्रणाली में। उनकी प्रणाली विनाशात्मक है, और मेरी संघटनात्मक। मैं सुधार में विश्वास नहीं करता, मैं विश्वास करता हूँ स्वाभाविक उन्नति में। मैं अपने को ईश्वर के स्थान पर प्रतिष्ठित कर अपने समाज के लोगों के सिर पर यह उपदेश मढ़ने का साहस नहीं कर सकता कि 'तुम्हें इसी भाँति चलना होगा, दूसरी तरह नहीं।' मैं तो सिर्फ उस गिलहरी की भाँति होना चाहता हूँ, जो राम के सेतु बाँधने के समय अपने योगदानस्वरूप थोड़ी बालू लाकर संतुष्ट हो गयी थी। ... यह अद्‌भुत राष्ट्र-जीवनरूपी यंत्र युग युग से कार्य करता आ रहा है, राष्ट्रीय जीवन का यह अद्‌भुत प्रवाह हम लोगों के सम्मुख बह रहा है। कौन जानता है, कौन साहसपूर्वक कह सकता है कि यह अच्छा है या बुरा, और यह किस प्रकार चलेगा? ... राष्ट्रीय जीवन को जिस ईंधन की जरूरत है, देते जाओ, बस वह अपने ढंग से उन्नति करता जायगा; कोई उसकी उन्नति का मार्ग निर्दिष्ट नहीं कर सकता। हमारे समाज में बहुत सी बुराइयाँ हैं, पर इस तरह बुराइयाँ तो दूसरे समाजों में भी हैं। ... दोषारोपण अथवा निंदा करने की भला आवश्यकता क्या? ... बुराई को हर कोई दिखा सकता है। मानवसमाज का सच्चा हितैषी तो वह है, जो इन कठिनाइयों से बाहर निकलने का उपाय बताये। ... क्या भारतवर्ष में कभी सुधारकों का अभाव था? क्या तुमने भारत का इतिहास पढ़ा है? रामानुज, शंकर, नानक, चैतन्य, कबीर और दादू कौन थे? ये सब बड़े बड़े धर्माचार्य जो भारत-गगन में अत्यंत उज्ज्वल नक्षत्रों की तरह एक के बाद एक उदय हुए और फिर अस्त हो गये, कौन थे? ... इन सब ने प्रयत्न किया, और उनका काम आज भी जारी है। भेद केवल इतना है। ... वे आज के समाज-सुधारकों की तरह अपने मुँह से कभी अभिशाप नहीं उगलते थे। उनके मुँह से केवल आशीर्वाद ही निकलता था। ... इससे जमीन-आसमान का फर्क पैदा हो जाता है। ... हम लोगों को अपनी प्रकृति के अनुसार उन्नति करनी होगी। विदेशी संस्थाओं

ने बलपूर्वक जिस कृत्रिम प्रणाली को हममें प्रचलित करने की चेष्टा की है, उसके अनुसार काम करना वृथा है। वह असंभव है। ... मैं दूसरी कौमों की सामाजिक प्रथाओं की निंदा नहीं करता। वे उनके लिए अच्छी हैं, पर हमारे लिए नहीं। उनके लिए जो कुछ अमृत है, हमारे लिए वही विष हो सकता है। पहले यही बात सीखनी होगी। अन्य प्रकार के विज्ञान अन्य प्रकार के परंपरागत संस्कार और अन्य प्रकार के आचारों से उनकी वर्तमान सामाजिक प्रथा गठित हुई है। और हम लोगों के पीछे हैं हमारे अपने परंपरागत संस्कार और हजारों वर्षों के कर्म। अतएव हमें स्वभावत: अपने संस्कारों के अनुसार ही चलना पड़ेगा; और यह हमें करना ही होगा।[१६]

मैं जीवन भर काम करता रहा हूँ, कम से कम काम करने का प्रयत्न करता रहा हूँ; मैं अपने अनुभव के बल पर तुमसे कहता हूँ कि जब तक तुम सच्चे अर्थों में धार्मिक नहीं होते, तब तक भारत का उद्धार होना असंभव है।[१७] भारतवर्ष का प्राण धर्म ही है, उसके जाने पर भारत नष्ट हो जायगा।[१८] अत: भारत में किसी प्रकार का सुधार या उन्नति की चेष्टा करने के पहले धर्म-प्रचार आवश्यक है। भारत को समाजवादी अथवा राजनीतिक विचारों से प्लावित करने के पहले आवश्यक है कि उसमें आध्यात्मिक विचारों की बाढ़ ला दी जाय।[१९]

भारत के राष्ट्रीय आदर्श हैं: त्याग और सेवा। आप इन धाराओं में तीव्रता उत्पन्न कीजिए, और शेष सब अपने आप ठीक हो जायगा।[२०]

भारत के सभी समाज-सुधारकों ने पुरोहितों के अत्याचारों और अवनति का उत्तरदायित्व धर्म के मत्थे मढ़ने की एक भयंकर भूल की और एक अभेद्य गढ़ को ढहाने का प्रयत्न किया। नतीजा क्या हुआ? असफलता! बुद्धदेव से लेकर राममोहन राय तक सब ने जाति-भेद को धर्म का एक अंग माना और जाति-भेद के साथ ही धर्म पर भी पूरा आघात किया और असफल रहें।[२१]

सुनो मित्र, प्रभु की कृपा से मुझे इसका रहस्य मालूम हो गया है। दोष धर्म का नहीं है।[२२] मेरा यही दावा है कि हिंदू समाज की उन्नति के लिए हिंदू धर्म के विनाश की कोई आवश्यकता नहीं और यह बात नहीं कि समाज की वर्तमान दशा हिंदू धर्म की प्राचीन रीति-नीतियों और आचारअनुष्ठानों के समर्थन के कारण हुई, वरन् ऐसा इसलिए हुआ कि धार्मिक तत्त्वों का सभी सामाजिक विषयो में अच्छी तरह उपयोग नहीं हुआ है। मैं इस कथन का प्रत्येक शब्द अपने प्राचीन शास्त्रों से प्रमाणित करने को तैयार हूँ।[२३] समाज की यह दशा दूर करनी होगी – परंतु धर्म का नाश करके नहीं, वरन् हिंदू धर्म के महान् उपदेशों का अनुसरण कर।[२४]

भला हो या बुरा, भारत में हजारों वर्ष से धार्मिक आदर्श की धारा प्रवाहित हो रही है। भला हो या बुरा, भारत का वायुमंडल इसी धार्मिक आदर्श से बीसियों सदियों तक पूर्ण रहकर जगमगाता रहा है। भला हो या बुरा, हम इसी धार्मिक आदर्श के भीतर पैदा हुए और पले हैं – यहाँ तक कि अब वह हमारे रक्त में ही मिल गया है; हमारे रोम रोम में वही धार्मिक आदर्श रम रहा है, वह हमारे शरीर का अंश और हमारी जीवनीशक्ति बन गया है। क्या तुम उस शक्ति की प्रतिक्रिया जागृत कराये बिना, उस वेगवती नदी के तल को, जिसे उसने हजारों वर्ष में अपने लिए तैयार किया है, भरे बिना ही धर्म का त्याग कर सकते हो? क्या तुम चाहते हो कि गंगा की धारा फिर बर्फ से ढके हुए हिमालय को लौट जाय और फिर वहाँ से नवीन धारा बनकर प्रवाहित हो? यदि ऐसा होना संभव भी हो, तो भी, यह कदापि संभव नहीं हो सकता कि यह देश अपने धर्ममय जीवन के विशिष्ट मार्ग को छोड़ सके और अपने लिए राजनीति अथवा अन्य किसी मार्ग का प्रारंभ कर सके। जिस रास्ते में बाधाएँ कम हैं, उसी रास्ते में तुम काम कर सकते हो। और भारत के लिए धर्म का मार्ग ही स्वल्पतम बाधावाला मार्ग है। धर्म के पथ का अनुसरण करना हमारे जीवन का मार्ग है, हमारी उन्नति का मार्ग है, और हमारे कल्याण का मार्ग भी यही है।[२५]

मेरा कहने का यह मतलब नहीं कि दूसरी चीज की आवश्यकता ही नहीं। मेरे कहने का यह अर्थ नहीं कि राजनीतिक या सामाजिक उन्नति अनावश्यक है, किंतु मेरा तात्पर्य यहीं है और में तुम्हें सदा इसकी याद

दिलाना चाहता हूँ कि ये सब यहाँ गौण विषय हैं, मुख्य विषय धर्म है। भारतीय मन पहले धार्मिक है, फिर कुछ और।[२६] हमारी आध्यात्मिकता ही हमारा जीवनरक्त है। यदि यह साफ बहता रहे, यदि यह शुद्ध एवं सशक्त बना रहे, तो सब कुछ ठीक है। राजनीतिक, सामाजिक, चाहे जिस किसी तरह की ऐहिक त्रुटियाँ हो, चाहे देश की निर्धनता ही क्यों न हो, यदि खून शुद्ध है तो सब सुधर जायँगे।[२७] इस भाँति भारत में सामाजिक सुधार का प्रचार तभी हो सकता है, जब यह देखा जाय की उस नयी प्रथा से आध्यात्मिक जीवन की उन्नति में कौन सी विशेष सहायता मिलेगी। राजनीति का प्रचार करने के लिए हमें दिखाना होगा कि उसके द्वारा हमारे राष्ट्रीय जीवन की आकांक्षा – आध्यात्मिक उन्नति – की कितनी अधिक पूर्ति हो सकेगी।[२८]

सब बातों से यही प्रकट हो रहा है कि समाजवाद अथवा जनता द्वारा शासन का कोई स्वरूप, उसे आप चाहे जिस नाम से पुकारें, उभरता आ रहा है। लोग निश्चय ही यह चाहेंगे कि उनकी पार्थिव आवश्यकताओं की पूर्ति हो, वे कम काम करें, उनका शोषण न हो, युद्ध न हो और भोजन अधिक मिले। इस बात का हमारे पास क्या प्रमाण है कि यह अथवा कोई दूसरी सभ्यता, जब तक कि वह धर्म पर, मनुष्य के भीतर के शुभ पर आधारित न हो, स्थायी होगी?[२९] केवल आध्यात्मिक ज्ञान ही ऐसा है, जो हमारे दु:खों को सदा के लिए नष्ट कर दें सकता है; अन्य किसी प्रकार के ज्ञान से आवश्यकताओं की पूर्ति केवल अल्प समय के लिए ही होती है।[३०]

अतएव हमारा उद्देश्य है ... आचंडाल प्रत्येक को धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष का अधिकार प्राप्त कराने में सहायता करना।[३१] 'धर्म को बिना हानि पहुँचाये जनता की उन्नति' – इसे अपना आदर्शवाक्य बना लो।[३२]

दूसरे का अनुकरण करना सभ्यता की निशानी नही है; यह एक महान् पाठ है, जो हमें याद रखना है। ... अनुकरण करना, हीन और डरपोक की तरह अनुकरण करना कभी उन्नति के पथ पर आगे नहीं बढ़ा सकता।

वह तो मनुष्य के अध:पतन का लक्षण है। ... उसी प्रकार तुम भी करो – औरों से उत्तम बातें सीखकर उन्नत बनो! जो सीखना नहीं चाहता, वह तो पहले ही मर चुका है। ... औरों के पास जो कुछ भी अच्छा पाओ, सीख लो; पर उसे अपने भाव के साँचे में ढालकर लेना होगा। दूसरे की शिक्षा ग्रहण करते समय उसके ऐसे अनुगामी न बनो कि अपनी स्वतंत्रता गँवा बैठो। भारत के इस जातीय जीवन को भूल मत जाना। पल भर के लिए भी ऐसा न सोचना कि भारतवर्ष के सभी अधिवासी यदि अमुक जाति की वेश-भूषा धारण कर लेते या अमुक जाति के आचार-व्यवहारादि के अनुयायी बन जाते तो बड़ा अच्छा होता।[३३]

जहाँ तक हो सके अतीत की ओर देखो, पीछे जो चिरंतन निर्झर बह रहा है, आकंठ उसका जल पिओ और उसके बाद सामने देखो और भारत को उज्ज्वलतर, महत्तर और पहले से और भी ऊँचा उठाओ।[३४]

गत शताब्दी में सुधार के लिए जो भी आंदोलन हुए हैं, उनमें से अधिकांश केवल ऊपरी दिखावा मात्र रहे हैं। उनमें से प्रत्येक ने केवल प्रथम दो वर्णों से ही संबंध रखा है, शेष दो से नहीं। विधवा-विवाह के प्रश्न से ७० प्रतिशत भारतीय स्त्रियों का कोई संबंध नहीं है। और देखो, मेरी बात पर ध्यान दो, इस प्रकार से सब आंदोलनों का संबंध भारत के केवल उच्च वर्णों से ही रहा है, जो जनसाधारण का तिरस्कार करके स्वयं शिक्षित हुए हैं। इन लोगों ने अपने अपने घर को साफ करने में कोई कसर नहीं रखी। पर यह को सुधार नहीं कहा जा सकता।[३५]

हमारा संघ दीन-हीन, दरिद्र, निरक्षर किसान तथा श्रमिक समाज के लिए है और उनके लिए सब कुछ करने के बाद जब समय बचेगा, केवल तब कुलीनों की बारी आयेगी। प्रेम द्वारा तुम उन किसान और श्रमिक लोगों को जीत सकोगे। ... "अपनी आत्मा का अपने उद्योग से उद्धार करो।"– यह सब परिस्थितियों में लागू होता है। हम उनकी सहायता इसीलिए करते हैं, जिससे वे स्वयं अपनी सहायता कर सकें। ... जिस क्षण उन्हें अपनी अवस्था का ज्ञान हो जायगा और वे सहायता तथा उन्नति की आवश्यकता

को समझेंगे, तब जानना कि तुम्हारा प्रभाव पड़ रहा है, एवं तुम ठीक रास्ते पर हो। ... किसान और श्रमिक समाज मरणासन्न अवस्था में हैं, इसीलिए जिस चीज की आवश्यकता है, वह यह है कि धनवान उन्हें अपनी शक्ति को पुन: प्राप्त करने में सहायता दें और कुछ नहीं। फिर किसानों और मजदूरों को अपनी समस्याओं का सामना और समाधान स्वयं करने दो।[३६]

अपनी समस्याओं को हल कर लेनेवाला एक कल्याणकारी और प्रबल लोकमत स्थापित करने में समय लगता है – काफी लंबा समय लगता है, और इस बीच हमें प्रतीक्षा करनी होगी। अतएव सामाजिक सुधार की संपूर्ण समस्या यह रूप लेती है: कहाँ हैं वे लोग, जो सुधार चाहते हैं? पहले उन्हें तैयार करो। सुधार चाहनेवाले लोग हैं कहाँ? ... इन अल्पसंख्य व्यक्तियों के अत्याचार के समान दुनिया में और अत्याचार नहीं। मुट्ठी भर लोग, जो सोचते हैं कि कतिपय बातें दोषपूर्ण हैं, राष्ट्र को गतिशील नहीं कर सकते। राष्ट्र में आज प्रगति क्यों नहीं है? क्यों वह जड़भावापन्न है? पहले राष्ट्र को शिक्षित करो, अपनी निजी विधायक संस्थाएँ बनाओ, फिर तो कानून आप ही आ जायँगे। जिस शक्ति के बल से, जिसके अनुमोदन से कानून का गठन होगा, पहले उसकी सृष्टि करो। आज राजा नहीं रहे; जिस नयी शक्ति से, जिस नये दल की सम्मति से नयी व्यवस्था गठित होगी, वह लोक-शक्ति कहाँ है? पहले उसी लोक-शक्ति को संगठित करो। अतएव समाज-सुधार के लिए भी प्रथम कर्तव्य है – लोगों को शिक्षित करना। और जब तक यह कार्य संपन्न नहीं होता, तब तक प्रतीक्षा करनी ही पड़ेगी।[३७]

लोगों को यदि आत्मनिर्भर बनने की शिक्षा न दी जाय तो सारे संसार की दौलत से भी भारत के एक छोटे से गाँव की सहायता नहीं की जा सकती है। शिक्षाप्रदान हमारा पहला कार्य होना चाहिए – नैतिक तथा बौद्धिक दोनों ही प्रकार की।[३८] शिक्षा का मतलब यह नहीं है कि तुम्हारे दिमाग में ऐसी बहुतसी बातें इस तर ठूँस दी जायँ कि अंतर्द्वंद्व होने लगे और तुम्हारा दिमाग उन्हें जीवन भर पचा न सके। जिस शिक्षा से हम अपना जीवननिर्माण कर सकें और मनुष्य बन सकें, चरित्रगठन कर सकें और विचारों का सामंजस्य कर सकें, वही वास्तव में शिक्षा कहलाने योग्य है। यदि तुम पाँच ही भावों को पचाकर तदनुसार जीवन और चरित्र गठित कर सके हो, तुम्हारी शिक्षा उस आदमी की अपेक्षा बहुत अधिक है, जिसने एक पूरे पुस्तकालय को कंठस्थ कर रखा है। ... इसलिए हमारा आदर्श यह होना चाहिए कि अपने देश की समग्र आध्यात्मिक और लौकिक शिक्षा के प्रचार का भार अपने हाथों में ले लें और जहाँ तक संभव हो, राष्ट्रीय रीति से राष्ट्रीय सिद्धांतों के आधार पर शिक्षा का विस्तार करें।[३९]

लोग यह भी कहते थे कि अगर साधारण जनता में शिक्षा का प्रसार होगा, तो दुनिया का नाश हो जायगा।[४०] विशेषकर भारत में, हमें समस्त देश में ऐसे पुराने सठियाये बूढ़े मिलते हैं, जो सब कुछ साधारण जनता से गुप्त रखना चाहते हैं। इसी कल्पना में वे अपना बड़ा समाधान कर लेते हैं कि वे सारे विश्व में सर्वश्रेष्ठ हैं।[४१] तो क्या वे समाज की भलाई के लिए ऐसा कहते हैं अथवा स्वार्थ से अंधे होकर? ... मुट्ठी भर अमीरों के विलास के लिए लाखों स्त्री-पुरुष अज्ञता के अंधकार और अभाव के नरक में पड़े रहें! क्योंकि उन्हें धन मिलने पर या उनके विद्या सीखने पर समाज डाँवाडोल हो जायगा!! समाज है कौन? वे लोग जिनकी संख्या लाखों है? या आप और मुझ जैसे दस-पाँच उच्च श्रेणीवाले!![४२] जिस जाति की जनता में विद्या-बुद्धि का जितना ही अधिक प्रचार है, वह जाति उतनी ही उन्नत है। ... यदि हमें फिर से उन्नति करनी है तो हमको उसी मार्ग पर चलना होगा, अर्थात जनता में विद्या का प्रसार करना होगा।[४३] सर्वसाधारण को शिक्षित बनाइए एवं उन्नत किजिए, तभी एक राष्ट्र का निर्माण हो सकता है। हमारे समाज-सुधारकों को तो घाव के स्थान का भी ज्ञान नहीं है।[४४]

केवल शिक्षा! शिक्षा! शिक्षा! यूरोप के बहुतेरे नगरों में घूमकर और वहाँ के गरीबों के भी अमन-चैन और शिक्षा को देखकर अपने गरीब देशवासियों की याद आती थी और मैं आँसू बहाता था। यह अंतर क्यों हुआ? उत्तर में पाया कि शिक्षा से।[४५]

अपने निम्न वर्ग के लोगों के प्रति हमारा एकमात्र कर्तव्य है – उनको

शिक्षा देना, उन्हें सिखाना कि इस संसार में तुम भी मनुष्य हो, तुम लोग भी प्रयत्न करने पर अपनी सब प्रकार उन्नति कर सकते हो। अभी वे लोग यह भाव खो बैठे हैं। ... उनमें विचार पैदा करना होगा। उनके चारों ओर दुनिया में क्या क्या हो रहा है, इस संबंध में उनकी आँखें खोल देनी होंगी; बस, फिर वे अपनी मुक्ति स्वयं सिद्ध कर लेंगे। प्रत्येक राष्ट्र, प्रत्येक पुरुष और प्रत्येक स्त्री को अपनी अपनी मुक्ति स्वयं सिद्ध करनी पड़ेगी। उनमें विचार पैदा कर दो – बस, उन्हें उसी एक सहायता की जरूरत है, शेष सब कुछ इसके फलस्वरूप आप ही हो जायगा। हमें केवल रासायनिक सामग्रियों को इकट्ठा भर कर देना है, उनका निर्दिष्ट आकार प्राप्त करना – बँध जाना तो प्राकृतिक नियमों से ही साधित होगा। हमारा कर्तव्य है, उनमें भावों का संचार कर देना – बाकी वे स्वयं कर लेंगे। भारत में बस यही करना है।[४६]

मेरी योजना है, भारत के इस जनता-समूह तक पहुँचने की।[४७] हमें अपने पूर्वजों द्वारा निश्चित की हुई योजना के अनुसार चलना होगा, अर्थात् सब आदर्शों को धीरे धीरे जनता में पहुँचाना होगा। उन्हें धीरे धीरे ऊपर उठाइए। अपने बराबर उठाइए। उन्हें लौकिक ज्ञान भी धर्म के द्वारा दीजिए।[४८]

मान लो, इन तमाम गरीबों के लिए तुमने पाठशालाएँ खोल भी दी, तो भी उनको शिक्षित करना संभव न होगा। कैसे होगा? चार बरस का बालक तुम्हारी पाठशाला में जाने की अपेक्षा अपने हल-बखर की ओर जाना अधिक पसंद करेगा। वह तुम्हारी पाठशाला न जा सकेगा। ... पर यदि पहाड़ मुहम्मद के पास नहीं जाता, तो मुहम्मद पहाड़ के पास पहुँच सकता है। मैं कहता हूँ कि शिक्षा स्वयं दरवाजे दरवाजे क्यों न जाय? यदि खेतीहर का लड़का शिक्षा तक नहीं पहुँच पाता, तो उससे हल के पास, या कारखाने में अथवा जहाँ भी हो, वहीं क्यों न भेंट की जाय? जाओ उसी के साथ – उसकी परछाईं के समान।[४९]

गरीबों को शिक्षा प्राय: मौखिक रूप से ही दी जानी चाहिए। स्कूल आदि का अभी समय नहीं आया है।[५०] तुम लोग कुछ धन इकट्ठा कर एक कोष बनाने का प्रयत्न करो। शहर में जहाँ गरीब से गरीब लोग रहते हैं, वहाँ एक मिट्टी का घर और एक हॉल बनाओ। कुछ मैजिक लैन्टर्न, थोड़े से नक्शे, ग्लोब और रासायनिक पदार्थ इकट्ठा करो। हर रोज शाम को वहाँ गरीबों को – यहाँ तक की चांडालों को भी – एकत्र करो। पहले उनको धर्म के उपदेश दो, फिर मैजिक लैन्टर्न और दूसरे पदार्थों के सहारे ज्योतिष, भूगोल आदि बोलचाल की भाषा में सिखाओ।[५१]

तुम लोगों का अब काम है, प्रांत प्रांत में, गाँव गाँव में जाकर देश के लोगों को समझा देना कि अब आलस्य से बैठे रहने से काम न चलेगा। शिक्षा-विहीन, धर्म-विहीन वर्तमान अवनति की बात उन्हें समझाकर कहो – 'भाई,सब उठो, जागो, और कितने दिन सोओगे?' और शास्त्र के महान् सत्यों को सरल करके उन्हें जाकर समझा दो। ... सभी को जाकर समझा दो कि ब्राह्मणों की तरह तुम्हारा भी धर्म में एकसा अधिकार है। चांडाल तक को इस अग्नि-मंत्र में दीक्षित करो और सरल भाषा में उन्हें व्यापार, वाणिज्य, कृषि आदि गृहस्थ-जीवन के अत्यावश्यक विषयों का उपदेश दो।[५२]

यह कहीं ज्यादा अच्छा होगा कि यह उच्च शिक्षा प्राप्त कर नौकरी के लिए दफ्तरों की खाक छानने की बजाय लोग थोड़ी सी यांत्रिक शिक्षा प्राप्त करें जिससे काम-धंधे से लगकर अपना पेट तो पाल सकेंगे।[५३] जो शिक्षा साधारण व्यक्ति को जीवनसंग्राम में समर्थ नहीं बना सकती, जो मनुष्य में चरित्र-बल, परहित-भावना तथा सिंह के समान साहस नहीं ला सकती, वह भी कोई शिक्षा है?[५४] हमें ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है, जिससे चरित्र-निर्माण हो, मानसिक शक्ति बढ़े, बुद्धि विकसित हो, और देश के युवक अपने पैरों पर खड़े होना सीखें।[५५]

इस देश में पुरुष और स्त्रियों में इतना अंतर क्यों समझा जाता है, यह समझना कठिन है। वेदांत शास्त्र में तो कहा है, एक ही चित् सत्ता सर्व भूत में विद्यमान है। तुम लोग स्त्रियों की निंदा ही करते हो। उनकी उन्नति के लिए तुमने क्या किया, बोलो तो?[५६]

स्त्रियों की पूजा करके सभी जातियाँ बड़ी बनी हैं। जिस देश में, जिस

जाति में स्त्रियों की पूजा नहीं, वह देश, वह जाति न कभी बड़ी बन सकी और न कभी बन ही सकेगी।[५७] महामाया की साक्षात् मूर्ति – इन स्त्रियों का उत्थान न होने से क्या तुम लोगों की उन्नति संभव है?[५८]

उनकी समस्याएँ बहुत सी हैं और गंभीर हैं, पर उनमें एक भी ऐसा नहीं है, जो जादूभरे शब्द 'शिक्षा' से हल न की जा सकती हो।[५९] पहले अपनी स्त्रियों को शिक्षा दो, उन्हें उनकी स्थिति पर छोड़ दो, तब वे तुमसे बतायेंगी कि उनके लिए क्या सुधार आवश्यक है।[६०] हमें नारियों को ऐसी स्थिति में पहुँचा देना चाहिए, जहाँ वे अपनी समस्या को अपने ढंग से स्वयं सुलझा सकें।[६१] स्त्रीजाति के प्रश्न को हल करने के लिए आगे बढ़नेवाले तुम हो कौन? क्या तुम भगवान हो ...? दूर हो![६२]

अब धर्म को केंद्र बनाकर स्त्री-शिक्षा का प्रचार करना होगा। धर्म के अतिरिक्त दूसरी शिक्षाएँ गौण होंगी। धर्मशिक्षा, चरित्र-गठन तथा ब्रह्मचर्यपालन इन्हीं के लिए तो शिक्षा की आवश्यकता है।[६३]

भारतीय नारियों से सीता के चरण-चिह्नों का अनुसरण कराकर अपनी उन्नति की चेष्टा करनी होगी, यही एकमात्र पथ है।[६४] हमारी नारियों को आधुनिक भावों में रँगने की जो चेष्टाएँ हो रही हैं, यदि उन सब प्रयत्नों में उनको सीता-चरित्र के आदर्श से भ्रष्ट करने की चेष्टा होगी, तो वे सब असफल होंगे, जैसा कि हम प्रतिदिन देखते हैं।[६५]

हिंदू स्त्री के लिए सतीत्व का अर्थ समझना सरल ही है, क्योंकि यह उसकी विरासत है, परंपरागत संपत्ति है। इसलिए सर्वप्रथम यह ज्वलंत आदर्श भारतीय नारी के हृदय में सर्वोपरि रहे, जिससे वे इतनी दृढ़चरित्र बन जायँ कि चाहे विवाहित हों या कुमारी, जीवन की हर अवस्था में अपने सतीत्व से तिल भर भी डिगने की अपेक्षा, जीवन की निडर होकर आहुति दे दें! ... साथ साथ, महिलाओं को विज्ञान एवं अन्य विषय, जिनसे कि केवल उनका ही नहीं, अन्य लोगों का भी हित हो, सिखाये जायें।[६६]

देश की स्त्रियों का जीवन इस प्रकार गठित हो जाने पर ही तो तुम्हारे देश में सीता, सावित्री, गार्गी का फिर से आविर्भाव हो सकेगा।[६७]

स्त्रियाँ जब शिक्षित होंगी तभी तो उनकी संतानों द्वारा देश का मुख उज्ज्वल होगा और देश में विद्या, ज्ञान, शक्ति, भक्ति जाग उठेगी।[६८]

'कुछ विनाश न करो।' मूर्ति-भंजनकारी सुधारक लोग संसार का उपकार नहीं कर सकते। किसी वस्तु को भी तोड़कर धूल में मत मिलाओ, वरन् उसका गठन करो! यदि हो सके, तो सहायता करो, नहीं तो चुपचाप हाथ उठाकर खड़े हो जाओ और देखो मामला कहाँ तक जाता है। यदि सहायता न कर सको तो अनिष्ट मत करो। ... जो जहाँ पर है, उसको वहीं से ऊपर उठाने की चेष्टा करो। ... तुम क्या कर सकते हो और मैं भी क्या कर सकता हूँ? क्या तुम यह समझते हो कि तुम एक शिशु को भी कुछ सिखा सकते हो? नहीं, तुम नहीं सिखा सकते। शिशु स्वयं ही शिक्षा लाभ करता है – तुम्हारा कर्तव्य है सुयोग देना और बाधा दूर करना।[६९]

जीवन में मेरी सर्वोच्च अभिलाषा यही है कि एक ऐसा चक्र-प्रवर्तन कर दूँ, जो उच्च एवं श्रेष्ठ विचारों को सब के द्वार द्वार पहुँचा दे और फिर स्त्री-पुरुष अपने भाग्य का निर्णय स्वयं कर लें।[७०]

'विचार और कार्य की स्वतंत्रता ही जीवन, उन्नति और कुशल-क्षेम का एकमेव साधन है।' जहाँ यह स्वतंत्रता नहीं है, वहाँ मनुष्य, उस जाति या राष्ट्र की अवनति निश्चय होगी।[७१] जैसे मनुष्य को सोचने-विचारने और उसे व्यक्त करने की स्वाधीनता मिलनी चाहिए, वैसे ही उसे खान-पान, पोशाक-पहनावा, विवाह-शादी, हरेक बात में स्वाधीनता मिलनी चाहिए, जब तक कि वह दूसरों को हानि न पहुँचाए।[७२]

मैं तुमसे कहता हूँ, इसी समय हमको बल और वीर्य की आवश्यकता है।[७३] दुर्बलता का उपचार सदैव उसका चिंतन करते रहना नहीं है, वरन् बल का चिंतन करना है।[७४] हमारे देश के लिए इस समय आवश्यकता है, लोहे की तरह ठोस मांस-पेशियों और मजबूत स्नायुवाले शरीरों की। आवश्यकता है इस तरह के दृढ़इच्छा-शक्तिसंपन्न होने की कि कोई उसका प्रतिरोध करने में समर्थ न हो। आवश्यकता है ऐसी अदम्य इच्छा-शक्ति की, जो ब्रह्मांड के सारे रहस्यों को भेद सकती हो। यदि यह कार्य करने के लिए

अथाह समुद्र के मार्ग में जाना पड़े, सदा सब तरह से मौत का सामना करना पड़े, तो भी हमें यह काम करना ही पड़ेगा। यही हमारे लिए परम आवश्यक है।[७५] और इस शक्ति को प्राप्त करने का पहला उपाय है – उपनिषदों पर विश्वास करना और यह विश्वास करना कि 'मैं आत्मा हूँ।'[७६] उपनिषदों में ऐसी प्रचुर शक्ति विद्यमान है कि वे समस्त संसार को तेजस्वी बना सकते हैं।[७७] सैकड़ों वर्षों से लोगों को मनुष्य की हीनावस्था का ही ज्ञान कराया गया है। ... अब उनको आत्मतत्त्व सुनने दो, यह जान लेने दो कि उनमें से नीच से नीचे में भी आत्मा विद्यमान है – वह आत्मा, जो न कभी मरती है, न जन्म लेती है।[७८]

जहाँ भी बुराई दिखाई देती है, वहीं अज्ञान भी मौजूद रहता है। मैंने अपने ज्ञान और अनुभव द्वारा मालूम किया है और यही शास्त्रों में भी कहा गया है कि भेद-बुद्धि से ही संसार में सारे अशुभ और अभेद-बुद्धि से ही सारे शुभ फलते हैं। यदि सारी विभिन्नताओं के अंदर ईश्वर के एकत्व पर विश्वास किया जाय, तो सब प्रकार से संसार का कल्याण किया जा सकता है। यही वेदांत का सर्वोच्च आदर्श है।[७९] वेदांत के इन महान् तत्त्वों का प्रचार आवश्यक है, ये केवल अरण्य में अथवा गिरि-गुफाओं में आबद्ध नहीं रहेंगे; वकीलों और न्यायाधीशों में, प्रार्थना-मंदिरों में, दरिद्रों की कुटियों में, मछुओं के घरों में, छात्रों के अध्ययनस्थानों में – सर्वत्र ही इन तत्त्वों की चर्चा होगी और ये काम में लाये जायँगे। हर एक व्यक्ति, हर एक संतान चाहे जो काम करे, चाहे जिस अवस्था में हो – उनकी पुकार सब के लिए है।[८०] इनका अवलंबन करो, इनकी उपलब्धि कर इन्हें कार्य में परिणत करो। बस देखोगे, भारत का उद्धार निश्चित है।[८१]

'यदि स्वभाव में समता न भी हो, तो भी सब को समान सुविधा मिलनी चाहिए। फिर भी यदि किसी को अधिक तथा किसी को कम सुविधा देनी हो, तो बलवान की अपेक्षा दुर्बल को अधिक सुविधा प्रदान करना आवश्यक है।' अर्थात् चांडाल के लिए शिक्षा की जितनी आवश्यकता है, उतनी ब्राह्मण के लिए नहीं। यदि किसी ब्राह्मण के पुत्र के लिए एक शिक्षक

आवश्यक हो, तो चांडाल के लड़के के लिए दस शिक्षक चाहिए। कारण यह है कि जिसकी बुद्धि की स्वाभाविक प्रखरता प्रकृति के द्वारा नहीं हुई है, उसके लिए अधिक सहायता करनी होगी।[८२]

इन लोगों को उठाना होगा, इन्हें अभयवाणी सुनानी होगी, बतलाना होगा कि तुम भी हमारे समान मनुष्य हो, तुम्हारा भी हमारे समान सब में अधिकार है।[८३]

उच्च वर्णों को नीचे उतारकर इस समस्या की मीमांसा न होगी, किंतु नीची जातियों को ऊँची जातियों को बराबर उठाना होगा। ... उस आदर्श का एक छोर ब्राह्मण है और दूसरा छोर चांडाल, और संपूर्ण कार्य चांडाल को उठाकर ब्राह्मण बनाना है।[८४] जातियों में समता लाने के लिए एकमात्र उपाय उस संस्कार और शिक्षा का अर्जन करना है, जो उच्च वर्णों का बल और गौरव है।[८५]

तुम्हें सावधान रहना चाहिए कि गरीब किसान-मजदूर और धनवानों में परस्पर कहीं जाति-विरोध का बीज न पड़ जाय।[८६]

विशेषाधिकार का भाव मानवजीवन का विष है। ... जब कभी विशेषाधिकार तोड़ दिया जाता है, तब जाति को अधिकाधिक प्रकाश तथा प्रगति उपलब्ध होती है। ... किसी को रंचमात्र विशेषाधिकार नहीं है।[८७]

यह स्वाभाविक है कि कुछ लोग स्वभावतः सक्षम होने के कारण दूसरों की अपेक्षा अधिक धन संग्रह कर लें, किंतु धन प्राप्त करने के इस सामर्थ्य के कारण वे उन लोगों पर अत्याचार और अंधाधुंध व्यवहार करें, जो उतना अधिक धन संग्रह करने में समर्थ न हों, तो यह कानून का अंग नहीं है, और संघर्ष इसके विरुद्ध हुआ है। अन्य के ऊपर सुविधा के उपभोग को विशेषाधिकार कहते हैं और इसका विनाश करना युग युग से नैतिकता का उद्देश्य रहा है। यह कार्य ऐसा है, जिसकी प्रवृत्ति साम्य और एकत्व की ओर है तथा जिससे विविधता का विनाश नहीं होता।[८८] इस प्रकार अपने विशेषाधिकारों तथा अपने भीतर की उस प्रत्येक वस्तु को, जो विशेषाधिकार के लाभ में सहायक है, रौंदते हुए हम उस ज्ञान के लिए उद्यम करें, इससे

समस्त मनुष्यजाति के प्रति अनन्यता की भावना पैदा हो।[८९]

भारत के पतन और दारिद्र्य-दु:ख का प्रधान कारण यह है कि घोंघे की तरह अपना सर्वांग समेटकर उसने अपना कार्यक्षेत्र संकुचित कर लिया था तथा आर्येतर दूसरी मानवजातियों के लिए, जिन्हें सत्य की तृष्णा थी, अपने जीवनप्रद सत्य-रत्नों का भांडार नहीं खोला था।[९०]

लेन-देन ही संसार का नियम है और यदि भारत फिर से उठना चाहे, तो यह परमावश्यक है कि वह अपने रत्नों को बाहर लाकर पृथ्वी की जातियों में बिखेर दें, और इसके बदले में वे जो कुछ दे सकें, उसे सहर्ष ग्रहण करें। विस्तार ही जीवन है और संकोच मृत्यु।[९१]

आज हमें आवश्यकता है वेदान्तयुक्त पाश्चात्य विज्ञान की, ब्रह्मचर्य के आदर्श, और श्रद्धा तथा आत्मविश्वास की।[९२] क्या समता, स्वतंत्रता, कार्य-कौशल, पौरुष में तुम पाश्चात्यों के भी गुरु बन सकते हो? क्या उसी के साथ साथ धर्म-विश्वास, संस्कृति और स्वाभाविक वृत्ति में हिंदुओं की परम मर्यादा पर जमें रह सकते हो?[९३] आपके वास्ते यह नितांत आवश्यक है कि अपनी शक्ति को व्यर्थ नष्ट करने और अक्सर निरर्थक बातें बनाने के स्थान पर, आप अंग्रेजों से नेताओं की आज्ञा का तुरंत पालन, ईर्ष्याहीनता, अथक लगन और अटूट आत्मविश्वास की शिक्षा प्राप्त करें। ... आज्ञा देनें की क्षमता प्राप्त करने से पहले प्रत्येक व्यक्ति को आज्ञा पालन करना सीखना चाहिए। ... जब तक हिंदू ईर्ष्या से बचना और नेताओं की आज्ञा का पालन करना नहीं सीखता, उसमें संगठन की क्षमता नहीं आयेगी। ... भारत को यूरोप से बाह्य प्रकृति पर विजय प्राप्त करना सीखना है और यूरोप को भारत से अंत:प्रकृति की विजय सीखनी होगी। ... हमने मानव-जाति के एक पहलू का विकास किया है, तो उन्होंने दूसरे का। चाहिए यह कि दोनों का मेल हो।[९४]

प्रत्येक मनुष्य एवं प्रत्येक राष्ट्र को महान् बनाने के लिए तीन बातें आवश्यक हैं –

१. सदाचार की शक्ति में विश्वास

२. ईर्ष्या और संदेह का परित्याग

३. जो सत् कर्म करने के लिए यत्नवान हों या कर रहे हों, उनकी सहायता करना।[९५]

सर्वप्रथम तो हमें उस चिह्न – ईर्ष्यारूपी कलंक – को धो डालना चाहिए। ... किसी से ईर्ष्या मत करो। भलाई के काम करनेवाले प्रत्येक को अपने हाथ का सहारा दो। तीनों लोकों को जीवमात्र के लिए शुभ कामना करो।[९६] विशाल बनना, उदार बनना, क्रमश: सार्वभौम भाव में उपनीत होना – यही हमारा लक्ष्य है।[९७] अन्य किसी बात की आवश्यकता नहीं, आवश्यकता है केवल प्रेम, निश्छलता और धैर्य की।[९८]

इस समय चाहिए – प्रबल कर्मयोग, हृदय में अमित साहस, अपरिमित शक्ति।[९९]

यदि तुम मेरी बात सुनो, तो तुम्हें अब पहले अपनी कोठरी का दरवाजा खुला रखना होगा। तुम्हारे घर के पास, बस्ती के पास कितने अभावग्रस्त लोग रहते हैं, उनकी तुम्हें यथार्थ सेवा करनी होगी। जो पीड़ित है उसके लिए औषधि और पथ्य का प्रबंध करो और शरीर के द्वारा उसकी सेवा-शुश्रुषा करो। जो भूखा है उसके लिए खाने का प्रबंध करो। तुमने तो इतना पढ़ा-लिखा है, अत: जो अज्ञानी है, उसे वाणी द्वारा जहाँ तक हो सके समझाओ।[१००] लाखों स्त्री-पुरुष पवित्रता के अग्निमंत्र से दीक्षित होकर, भगवान के प्रति अटल विश्वास से शक्तिमान बनकर और गरीबों, पतितों तथा पददलितों के प्रति सहानुभूति से सिंह के समान साहसी बनकर इस संपूर्ण भारत देश के एक छोर से दूसरे छोर तक सर्वत्र उद्धार के संदेश, सेवा के संदेश, सामाजिक उत्थान के संदेश और समानंता के संदेश का प्रचार करते हुए विचरण करेंगे।[१०१]

भारत तभी जगेगा जब विशाल हृदयवाले सैकड़ों स्त्री-पुरुष भोग-विलास और सुख की सभी इच्छाओं को विसर्जित कर मन, वचन और शरीर से उन करोड़ों भारतीयों के कल्याण के लिए सचेष्ट होंगे जो दरिद्रता तथा मूर्खता के अगाध सागर में निरंतर नीचे डूबते जा रहे हैं।[१०२]

□□□

चतुर्थ अध्याय

सदा बढ़े चलो

तुम तो ईश्वर की संतान हो, अमर आनंद के भागी हो, पवित्र और पूर्ण आत्मा हो।[१] अतएव तुम कैसे अपने को जबरदस्ती दुर्बल कहते हो?[२] उठो, साहसी बनो, वीर्यवान होओ। सब उत्तरदायित्व अपने कंधे पर लो–यह याद रखो कि तुम स्वयं अपने भाग्य के निर्माता हो। तुम जो कुछ बल या सहायता चाहो, सब तुम्हारे ही भीतर विद्यमान है।[३]

ब्राह्मणेतर जातियों से मैं कहता हूँ, ठहरो, जल्दी मत करो, ब्राह्मणों से लड़ने का मौका मिलते ही उसका उपयोग न करो, क्योंकि ... तुम अपने ही दोष से कष्ट पा रहे हो। ... समाचारपत्रों ने इन सब व्यर्थ वाद-विवादों और झगड़ों में शक्ति क्षय न करके, अपने ही घरों में इस तरह लड़ते-झगड़ते न रहकर – जो कि पाप है – ब्राह्मणों के समान ही संस्कार प्राप्त करने के लिए अपनी सारी शक्ति लगा दो। बस तभी तुम्हारा उद्देश्य सिद्ध होगा।[४]

तुम ऊँची जात वाले क्या जीवित हो? तुम लोग हो दस हजार वर्ष पीछे के 'ममी'!! जिन्हें 'सचल श्मशान' कहकर तुम्हारे पूर्वपुरुषों ने घृणा की है, भारत में जो कुछ वर्तमान जीवन है, वह उन्हीं में है और 'सचल श्मशान' हो तुम लोग! ...तुम लोगों की अस्थिमय अँगुलियों में पूर्वपुरुषों के संचित कुछ अमूल्य रत्नांगुलीय हैं, तुम्हारे दुर्गंधित शरीरों को भेंटती हुई पूर्व काल की बहुतसी रत्नपेटिकाएँ सुरक्षित हैं। ... उन्हें उत्तराधिकारियों को दो, जितने शीघ्र दे सको, दे दो। तुम शून्य में विलीन हो जाओ और फिर एक नवीन भारत निकल पड़े।[५]

ये निम्न श्रेणी के लोग जब जाग उठेंगे और अपने ऊपर होनेवाले तुम लोगों के अत्याचारों को समझ लेंगे, तब उनकी फूँक से ही तुम लोग उड़ जाओगे। उन्हीं ने तुम्हें सभ्य बनाया है, उस समय वे ही सब कुछ मिटा देंगे। ... इसीलिये कहता हूँ, इन सब निम्न जाति के लोगों को विद्या-दान, ज्ञान-दान देकर इन्हें नींद से जगाने के लिए सचेष्ट हो जाओ! जब वे लोग जागेंगे – और एक दिन वे अवश्य जागेंगे – तब वे भी तुम लोगों के किये उपकारों को नहीं भूलेंगे और तुम लोगों के प्रति कृतज्ञ रहेंगे।[६]

हर एक अभिजात वर्ग का कर्तव्य है कि अपने कुलीन तंत्र की कब्र वह आप ही खोदे, और जीतना शीघ्र इसे कर सके, उतना ही अच्छा है। जितनी ही वह देर करेगा, उतनी ही वह सड़ेगी और उसकी मृत्यु भी उतनी भयंकर होगी। अतः यह ब्राह्मणजाति का कर्तव्य है कि भारत की दूसरी सब जातियों के उद्धार की चेष्टा करें।[७]

जब तक करोड़ों भूखे और अशिक्षित रहेंगे, तब तक मैं प्रत्येक उस आदमी को विश्वासघातक समझूँगा, जो उनके खर्च पर शिक्षित हुआ है, परंतु जो उनपर तनिक भी ध्यान नहीं देता! वे लोग जिन्होंने गरीबों को कुचलकर धन पैदा किया है और अब ठाठ-बाट से अकड़कर चलते हैं, यदि उन बीस करोड़ देशवासियों के लिए जो इस समय भूखे और असभ्य बने हुए हैं, कुछ नहीं करते, तो वे घृणा के पात्र हैं।[८]

"आत्मवत् सर्वभूतेषु" (सभी प्राणियों को स्वयं की तरह देखना) क्या यह वाक्य केवल मात्र पोथी में निबद्ध रहने के लिए है? लोग गरीबों को रोटी का टुकड़ा नहीं दे सकते, वे फिर मुक्ति क्या दे सकते हैं? दूसरों के श्वास-प्रश्वासों से जो अपवित्र बन जाते हैं, वे फिर दूसरों को क्या पवित्र बना सकते हैं? अस्पृश्यता एक प्रकार की मानसिक व्याधि है; उससे सावधान रहना।[९]

उठो और अपना पौरुष प्रकट करो। अपना ब्राह्मणत्व दीप्त करो, प्रभु-भाव से नहीं, अंधविश्वासों और पूर्व-पश्चिम के प्रपंचों के सहारे पनपनेवाले विकृत घातक अहंभाव से नहीं – बल्कि सेवक की भावना के साथ दूसरों

को ऊपर उठाकर![१०]

धन, विद्या या ज्ञान को प्राप्त करने में समाज के अंतर्गत प्रत्येक व्यक्ति को समान सुविधा रहनी चाहिए।[११] ... सभी विषयों में स्वाधीनता, यानी मुक्ति की ओर अग्रसर होना ही पुरुषार्थ है। ... जो सामाजिक नियम इस स्वाधीनता के स्फुरण में बाधा डालते हैं वे ही अहितकर्म हैं और ऐसा करना चाहिए जिससे वे जल्द नाश हो जायँ। जिन नियमों के द्वारा सब जीव स्वाधीनता की ओर बढ़ सकें उन्हीं की पुष्टि करनी चाहिए।[१२]

प्रत्येक वस्तु का अग्रांश दीनों को देना चाहिए, अवशिष्ट भाग पर ही हमारा अधिकार है।[१३] सब से पहले उस विराट् की पूजा करो, जिसे तुम अपने चारों ओर देख रहे हो 'उसकी' पूजा करो। 'वर्शिप' ही इस संस्कृत शब्द का ठीक समानार्थक है, अंग्रेजी के किसी अन्य शब्द से काम नहीं चलेगा। ये मनुष्य और पशु, जिन्हें हम आस-पास और आगे-पीछे देख रहे हैं, ये ही हमारे ईश्वर हैं। इनमें सब से पहले पूज्य हैं हमारे अपने देशवासी।[१४] अपना सारा ध्यान इसी एक ईश्वर पर लगाओ, हमारा देश ही हमारा जागृत देवता है। सर्वत्र उसके हाथ हैं, सर्वत्र उसके पैर हैं और सर्वत्र उसके कान हैं। समझ लो कि दूसरे देवी-देवता सो रहे हैं। जिन व्यर्थ के देवी-देवताओं को हम देख नहीं पाते, उनके पीछे तो हम बेकार दौड़ें और जिस विराट् देवता को हम अपने चारों ओर देख रहे हैं, उसकी पूजा ही न करें?[१५]

अतएव हर एक स्त्री को, हर एक पुरुष को और सभी को ईश्वर के ही समान देखो।[१६] "मैंने इतनी तपस्या करके यही सार समझा है कि जीव जीव में वे अधिष्ठित हैं, इसके अतिरिक्त ईश्वर और कुछ भी नहीं। जो जीवों पर दया करता है, वही व्यक्ति ईश्वर की सेवा कर रहा है।"[१७] यदि तुम अपने भाई मनुष्य की, व्यक्त ईश्वर की, उपासना नहीं कर सकते तो उस ईश्वर की कल्पना कैसे कर सकोगे, जो अव्यक्त है?[१८] यदि ईश्वरोपासना के लिए मंदिर निर्माण करना चाहते हो तो करो, किंतु सोच लो कि उससे भी उच्चतर, उससे भी महान् मानवदेहरूपी मंदिर तो पहले से ही

मौजूद है।[१९]

अपने तन, मन और वाणी को 'जगद्धिताय' अर्पित करो। तुमने पढ़ा है, 'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव' – 'अपनी माता को ईश्वर समझो, अपने पिता को ईश्वर समझो' परंतु मैं कहता हूँ, दरिद्रदेवो भव, मूर्खदेवो भव – गरीब, निरक्षर, मूर्ख और दुःखी, इन्हें अपना ईश्वर मानो। इनकी सेवा करना ही परम धर्म समझो।[२०]

मैं अच्छी तरह जानता हूँ, भारतमाता अपनी उन्नति के लिए अपने श्रेष्ठ संतानों की बलि चाहती है।[२१] संसार के वीरों को और सर्वश्रेष्ठों को 'बहुजनहिताय, बहुजनसुखाय' अपना बलिदान करना होगा। असीम दया और प्रेम से परिपूर्ण सैकड़ों बुद्धों की आवश्यकता है।[२२]

मनुष्य, केवल मनुष्य भर चाहिए। बाकी सब कुछ अपने आप हो जायगा। आवश्यकता है वीर्यवान, तेजस्वी, श्रद्धासंपन्न और दृढ़विश्वासी निष्कपट नवयुवकों की। ऐसे सौ मिल जायँ, तो संसार का कायाकल्प हो जाय।[२३] पहले उनका जीवननिर्माण करना होगा, तब कहीं काम होगा।[२४]

जो सच्चे हृदय से भारतीय कल्याण का व्रत ले सकें तथा उसे ही जो अपना एकमात्र कर्तव्य समझें – ऐसे युवकों के साथ कार्य करते रहो। उन्हें जागृत करो, संगठित करो तथा उनमें त्याग का मंत्र फूँक दो। भारतीय युवकों पर ही यह कार्य संपूर्ण रूप से निर्भर है।[२५]

मैंने तो इन नवयुवकों का संगठन करने के लिए जन्म लिया है। यही क्या, प्रत्येक नगर में सैकड़ों और मेरे साथ सम्मिलित होने को तैयार हैं, और मैं चाहता हूँ कि इन्हें अप्रतिहत गतिशील तरंगों की भाँति भारत में सब ओर भेजूँ, जो दीन-हीनों एवं पददलितों के द्वार पर सुख, नैतिकता, धर्म एवं शिक्षा उँड़ेल दें। और इसे मैं करूँगा, या मरूँगा।[२६]

उठो! उठो! संसार दुःख से जल रहा है। क्या तुम सो सकते हो? हम बार बार पुकारें, जब तक सोते हुए देवता न जाग उठें, जब तक अंतर्यामी देव उस पुकार का उत्तर न दें। जीवन में और क्या है?[२७]

महामोह के ग्राह से ग्रस्त लोगों की ओर दृष्टिपात करो, हाय, उनके

हृदयभेदक करुणापूर्ण आर्तनाद को सुनो। हे वीरो, बद्धों को पाशमुक्त करने के लिए, दरिद्रों के कष्टों को कम करने के लिए तथा अज्ञजनों के अंतर का असीम अंधकार दूर करने के लिए आगे बढ़ो।[२८] हृदयहीन, कोरे बुद्धिवादी लेखकों और समाचारपत्रों में प्रकाशित उनके निस्तेज लेखों की भी परवाह मत करो:[२९] मेरे भाईयो, हम लोग गरीब हैं, नगण्य हैं, किंतु हम जैसे गरीब लोग ही हमेशा उस परम पुरुष के यंत्र बने हैं।[३०] संसार में जितने भी बड़े बड़े और महान् कार्य हुए हैं, उन्हें गरीबों ने ही किया है।[३१] आशा तुम लोगों से है – जो विनीत, निरभिमानी और विश्वासपरायण हैं।[३२]

हमेशा बढ़ते चलो! मरते दम तक गरीबों और पददलितों के लिए सहानुभूति – यही हमारा आदर्शवाक्य है। वीर युवको! बढ़े चलो![३३] ईश्वर के प्रति आस्था रखो। किसी चालबाजी की आवश्यकता नहीं, उससे कुछ नहीं होता। दुखियों का दर्द समझो और ईश्वर से सहायता की प्रार्थना करो – वह अवश्य मिलेगी। ... युवको! मैं गरीबों, मूर्खों और उत्पीड़ितों के लिए इस सहानुभूति और प्राणपण प्रयत्न को थाती के तौर पर तुम्हें अर्पण करता हूँ। ... और तब प्रतिज्ञा करो कि अपना सारा जीवन इन तीस करोड़ लोगों के उद्धार-कार्य में लगा दोगे जो दिनों दिन अवनति के गर्त में गिरते जा रहे हैं।[३४] यदि तुम सचमुच मेरी संतान हो, तो तुम किसी से न डरोगे, न किसी बात पर रुकोगे। तुम सिंहतुल्य होगे। हमें भारत को और पूरे संसार को जगाना है।[३५]

गाँव गाँव तथा घर घर में जाकर लोकहित एवं ऐसे कार्यों में आत्मनियोग करो, जिससे कि जगत् का कल्याण हो सके। चाहे अपने को नरक में क्यों न जाना पड़े, परंतु दूसरों की मुक्ति हो।[३६] अरे, मृत्यु जब अवश्यंभावी है तो ईंट-पत्थरों की तरह मरने के बजाय वीर की तरह मरना क्या अच्छा नहीं? ... जराजीर्ण होकर थोड़ा थोड़ा करके क्षीण होते हुए मरने के बजाय वीर की तरह दूसरों के अल्प कल्याण के लिए लड़कर उसी समय मर जाना अच्छा है।[३७]

तुम काम में लग जाओ; फिर देखोगे, इतनी शक्ति आयेगी कि तुम

उसे सँभाल न सकोगे। दूसरों के लिए रत्ती भर काम करने से भीतर की शक्ति जाग उठती है। दूसरों के लिए रत्ती भर सोचने से धीरे धीरे हृदय में सिंह का सा बल आ जाता है। तुम लोगों से मैं इतना स्नेह करता हूँ, परंतु यदि तुम लोग दूसरों के लिए परिश्रम करते करते मर भी जाओ तो भी यह देखकर मुझे प्रसन्नता ही होगी।[३८]

केवल वही व्यक्ति सब की अपेक्षा उत्तम रूप से कार्य करता है, जो पूर्णतया निःस्वार्थी है, जिसे न तो धन की लालसा है, न कीर्ति की और न किसी अन्य वस्तु की ही। और मनुष्य जब ऐसा करने में समर्थ हो जायगा, तो वह भी एक बुद्ध बन जायगा, और उसके भीतर से ऐसी शक्ति प्रकट होगी, जो संसार की अवस्था को संपूर्ण रूप से परिवर्तन कर सकती है।[३९]

प्रेम ही मैदान जीतेगा। क्या तुम अपने भाई – मनुष्यजाति – को प्यार करते हो? ईश्वर को कहाँ ढूँढ़ने चले हो – ये सब गरीब, दुःखी, दुर्बल मनुष्य क्या ईश्वर नही हैं? इन्हीं की पूजा पहले क्यों नहीं करते? गंगा-तट पर कुआँ खोदने क्यों जाते हो? प्रेम की असाध्यसाधिनी शक्ति पर विश्वास करो।[४०]

हम धन्य हैं, जो हमें यह सौभाग्य प्राप्त है कि हम उनके लिए कर्म करें – उनको सहायता देने के लिए नहीं। इस 'सहायता' शब्द को मन से सदा के लिए निकाल दो। तुम किसी की सहायता नहीं कर सकते। यह सोचना कि तुम सहायता कर सकते हो, महा अधर्म है – घोर ईशनिंदा है।[४१] केवल ईश्वरपूजा के भाव से सेवा करो। दरिद्र व्यक्तियों में हमको भगवान को देखना चाहिए, अपनी ही मुक्ति के लिए उनके निकट जाकर हमें उनकी पूजा करनी चाहिए। अनेक दुःखी और कंगाल प्राणी हमारी मुक्ति के माध्यम हैं, ताकि हम रोगी, पागल, कोढ़ी, पापी आदि स्वरूपों में विचरते हुए प्रभु की सेवा करके अपना उद्धार करें।[४२]

अपने को भूल जाओ; आस्तिक हो या नास्तिक – प्रत्येक के लिए यही प्रथम पाठ है।[४३]

जब तुम सुख की कामना समाज के लिए त्याग सकोगे तब तुम भगवान

बुद्ध बन जाओगे, तब तुम मुक्त हो जाओगे।[४४]

आओ, हम सब प्रार्थना करें, 'हे कृपामयी ज्योति, पथप्रदर्शन करो' – और अंधकार में से एक किरण दिखाई देगी, पथप्रदर्शक कोई हाथ आगे बढ़ आयेगा। ... जो दारिद्रय, पुरोहित-प्रपंच तथा प्रबलों के अत्याचारों से पीड़ित हैं, उन भारत के करोड़ों पददलितों के लिए प्रत्येक आदमी दिन-रात प्रार्थना करें। मैं धनवान और उच्च श्रेणी की अपेक्षा उन पीड़ितों को ही धर्म का उपदेश देना पसंद करता हूँ। मैं न कोई तत्त्व-जिज्ञासु हूँ, न दार्शनिक हूँ और न सिद्ध पुरुष हूँ। मैं निर्धन हूँ और निर्धनों से प्रेम करता हूँ। – बीस करोड़ नर-नारी जो सदा गरीबी और मूर्खता के दलदल में फँसे हैं, उनके लिए किसका हृदय रोता है? ... उसी को मैं महात्मा कहता हूँ, जिसका हृदय गरीबों के लिए द्रवीभूत होता है। ... कौन उनके दुःख में दुःखी है? ... ये ही तुम्हारे ईश्वर हैं, ये ही तुम्हारे इष्ट बनें। निरंतर इन्हीं के लिए सोचो, इन्हीं के लिए काम करो, इन्हीं के लिए निरंतर प्रार्थना करो – प्रभु तुम्हें मार्ग दिखायेगा।[४५]

बड़े काम करने के लिए तीन बातों की आवश्यकता होती है। पहला है हृदय की अनुभव-शक्ति। ... क्या तुम अनुभव करते हो? क्या तुम हृदय से अनुभव करते हो कि देव और ऋषियों की करोड़ो संतानें आज पशुतुल्य हो गयी हैं? क्या तुम हृदय से अनुभव करते हो कि लाखों आदमी आज भूखों मर रहे हैं और लाखों लोग शताब्दियों से इसी भाँति भूखों मरते आये हैं? ... क्या तुम यह सब सोचकर बेचैन हो जाते हो? क्या इस भावना ने तुम्हें निद्राहीन कर दिया है? क्या यह भावना तुम्हारे रक्त के साथ मिलकर तुम्हारी धमनियों में बहती है? क्या वह तुम्हारे हृदय के स्पंदन से मिल गयी है? क्या उसने तुम्हें पागल सा बना दिया है? क्या देश की दुर्दशा की चिंता ही तुम्हारे ध्यान का एकमात्र विषय बन बैठी है? और क्या इस चिंता में विभोर हो जाने से तुम अपने नाम-यश, पुत्र-कलत्र, धन-संपत्ति, यहाँ तक कि अपने शरीर की भी सुध बिसर गये हो? क्या तुमने ऐसा किया है? यदि 'हाँ', तो जानो कि तुमने देशभक्त होने की पहली सीढ़ी

पर पैर रखा है – हाँ, केवल पहली ही सीढ़ी पर।[४६] क्या इस दुर्दशा का निवारण करने के लिए तुमने कोई यथार्थ कर्तव्य-पथ निश्चित किया है? क्या लोगों की भर्त्सना न कर उनकी सहायता का कोई उपाय सोचा है? क्या स्वदेशवासियों को उनकी इस जीवन्मृत अवस्था से बाहर निकालने के लिए कोई मार्ग ठीक किया है? क्या उनके दुःखों को कम करने के लिए दो सांत्वनादायक शब्दों को खोजा है? ... किंतु इतने ही से पूरा न होगा। क्या तुम पर्वताकार विघ्न-बाधाओं को लाँघकर कार्य करने के लिए तैयार हो? यदि सारी दुनिया हाथ में नंगी तलवार लेकर तुम्हारे विरोध में खड़ी हो जाय, तो भी क्या तुम जिसे सत्य समझते हो, उसे पूरा करने का साहस करोगे? ... फिर भी क्या तुम उसके पीछे लगे रहकर अपने लक्ष्य की ओर सतत बढ़ते रहोगे? ... क्या तुममें ऐसी दृढ़ता है? – यदि तुममें ये तीन बातें हैं, तो तुममें से प्रत्येक अद्‌भुत कार्य कर सकता है।[४७]

जिससे उद्देश्य एवं लक्ष्य कार्य में परिणत हो जाय, उसी के लिए प्रयत्न करो। मेरे साहसी, महान् सदाशय बच्चों! काम में जी-जान से लग जाओ! नाम, यश अथवा अन्य तुच्छ विषयों के लिए पीछे मत देखो। स्वार्थ को बिल्कुल त्याग दो और कार्य करो।[४८]

आगे बढ़ो। हमें अनंत शक्ति, अनंत उत्साह, अनंत साहस तथा अनंत धैर्य चाहिए, तभी महान् कार्य संपन्न होगा।[४९]

मेरे बच्चे, मैं जो चाहता हूँ वह है लोहे की नसें और फौलाद के स्नायु जिनके भीतर ऐसा मन वास करता हो, जो कि वज्र के समान पदार्थ का बना हो। बल, पुरुषार्थ, क्षात्रवीर्य और ब्रह्मतेज![५०]

आज्ञा-पालन के गुण का अनुशीलन करो, लेकिन अपने धर्मविश्वास को न खोओ। गुरुजनों के अधीन हुए बिना कभी भी शक्ति केंद्रीभूत नहीं हो सकती, और बिखरी हुई शक्तियों को केंद्रीभूत किये बिना कोई महान् कार्य नहीं हो सकता।[५१]

जो कुछ असत्य है, उसे पास न फटकने दो। सत्य पर डटे रहो; बस, तभी हम सफल होंगे – शायद थोड़ा अधिक समय लगे, पर सफल

हम अवश्य होंगे। ... इस तरह काम करो कि मानो तुममें से हर एक के ऊपर सारा काम आ पड़ा है।[५२]

नीतिपरायण तथा साहसी बनो, अंत:करण पूर्णतया शुद्ध रहना चाहिए। पूर्ण नीतिपरायण तथा साहसी बनो – प्राणों के लिए भी कभी न डरो। धार्मिक मतमतांतरों को लेकर व्यर्थ में माथा-पच्ची मत करो। कायर लोग ही पापाचरण करते हैं, वीरपुरुष कभी पापानुष्ठान नहीं करते – यहाँ तक कि कभी वे मन में भी पाप का विचार नहीं लाते।[५३]

इन दो चीजों से बचे रहना – क्षमताप्रियता और ईर्ष्या। सदा आत्मविश्वास का अभ्यास करना।[५४]

पहले आदमी – 'मनुष्य' उत्पन्न करो। हमें अभी 'मनुष्यों' की आवश्यकता है, और बीना श्रद्धा के मनुष्य कैसे बन सकते हैं?[५५]

उठो, जागो, स्वयं जगकर औरों को ज़गाओ। अपने नर-जन्म को सफल करो। "उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत (उठो, जागो और तब तक रुको नहीं, जब तक लक्ष्य प्राप्त न हो जाय)"।[५६]

□□□

पंचम अध्याय

भारत का भविष्य

क्या भारत मर जायगा? तब तो संसार से सारी आध्यात्मिकता का समूल नाश हो जायगा, सारे सदाचारपूर्ण आदर्श जीवन का विनाश हो जायगा, धर्मों के प्रति सारी मधुर सहानुभूति नष्ट हो जायगी, सारी भावुकता का भी लोप हो जायगा। और उसके स्थान में कामरूपी देव और विलासितारूपी देवी राज्य करेगी। धन उनका पुरोहित होगा। प्रतारणा, पाशविक बल और प्रतिद्वंद्विता, ये ही उनकी पूजापद्धति होगी और मानवता उनकी बलिसामग्री हो जायगी। ऐसी दुर्घटना कभी हो नहीं सकती।[१]

फिर से कालचक्र घूमकर आ रहा है, एक बार फिर भारत से वही शक्ति-प्रवाह निःसृत हो रहा है, जो शीघ्र ही समस्त जगत् को प्लावित कर देगा।[२] विश्वास रखो, विश्वास रखो – प्रभु की आज्ञा है कि भारत की उन्नति अवश्य ही होगी और साधारण तथा गरीब लोग सुखी होंगे।[३]

भारत का पुनरुत्थान होगा, पर वह जड़ की शक्ति से नहीं, वरन् आत्मा की शक्ति द्वारा। वह उत्थान विनाश की ध्वजा लेकर नहीं, वरन् शांति और प्रेम की ध्वजा से – संन्यासियों के वेश से – धन की शक्ति से नहीं, बल्कि भिक्षापात्र की शक्ति से संपादित होगा।[४]

हमारे कार्यों पर भारत का भविष्य निर्भर है। देखिए वह भारतमाता तत्परता से प्रतीक्षा कर रही है। वह केवल सो रही है।[५] अतः यदि भारत को महान् बनाना है, उसका भविष्य उज्ज्वल करना है, तो इसके लिए आवश्यकता है संगठन की, शक्ति-संग्रह की और बिखरी हुई इच्छाशक्ति को एकत्र कर उसमें समन्वय लाने की। अथर्ववेद संहिता की एक विलक्षण

ऋचा याद आ गयी, जिसमें कहा गया है, 'तुम सब लोग एकमन हो जाओ, सब लोग एक ही विचार के बन जाओ।' ... एकमन हो जाना ही समाजगठन का रहस्य है। ... बस, इच्छाशक्ति का संचय और उसका समन्वय कर उन्हें एकमुखी करना ही वह सारा रहस्य है।[६]

हे भाइयो, हम सभी लोगों को इस समय कठिन परिश्रम करना होगा। अब सोने का समय नहीं है।[७] पहले से ही बड़ी बड़ी योजनाएँ न बनाओ, धीरे धीरे कार्य प्रारंभ करो – जिस जमीन पर खड़े हो, उसे अच्छी तरह से पकड़कर क्रमशः ऊँचे चढ़ने की चेष्टा करो।[८] जागो, जागो, लम्बी रात बीत रही है, सूर्योदय का प्रकाश दिखाई दे रहा है। ऊँची तरंग उठ रही है, उसका भीषण वेग किसी से न रुक सकेगा।[९]

मैं अपने मानसचक्षु से भावी भारत की उस पूर्णावस्था को देखता हूँ, जिसका इस विप्लव और संघर्ष से तेजस्वी और अजेय रूप में वेदांती बुद्धि और इस्लामी शरीर के साथ उत्थान होगा। ... हमारी मातृभूमि के लिए इन दोनों विशाल मतों का सामंजस्य – हिंदुत्व और इस्लाम – वेदांती बुद्धि और इस्लामी शरीर – यही एक आशा है।[१०]

यह पहले कहा जा चुका है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र – ये चारों ही वर्ण यथाक्रम पृथ्वी का भोग करते हैं।[११] एक ऐसा समय आयेगा जब शूद्रत्वसहित शूद्रों का प्राधान्य होगा, अर्थात् आजकल जिस प्रकार शूद्र जाति वैश्यत्व अथवा क्षत्रियत्व लाभ कर अपना बल दिखा रही है, उस प्रकार नहीं, वरन् अपने शूद्रोचित धर्मकर्मसहित वह समाज में आधिपत्य प्राप्त करेगी। पाश्चात्य जगत् में इसकी लालिमा भी आकाश में दिखने लगी है, और इसका फलाफल विचार कर सब लोग घबराये हुए हैं। 'सोशलिज्म', 'अनार्किज्म' 'नाइहिलिज्म' आदि संप्रदाय इस विप्लव की आगे चलनेवाली ध्वजाएँ हैं।[१२]

सुदीर्घ रजनी अब समाप्त होती हुई जान पड़ती है। महादुःख का प्रायः अंत ही प्रतीत होता है। महानिद्रा में निमग्न शव मानो जागृत हो रहा है। इतिहास की बात तो दूर रही, जिस सुदूर अतीत के घनांधकार को भेद करने में अनुश्रुतियाँ भी असमर्थ हैं, वहीं से एक आवाज हमारे पास आ रही है। ज्ञान, भक्ति और कर्म के अनंत हिमालयस्वरूप हमारी मातृभूमि भारत की हर एक चोटी पर प्रतिध्वनित होकर यह आवाज मृदु, दृढ़, परंतु अभ्रांत स्वर में हमारे पास तक आ रही है। जितना समय बीतता है, उतनी ही वह और भी स्पष्ट तथा गंभीर होती जाती है – और देखो, वह निद्रित भारत अब जागने लगा है। मानो हिमालय के प्राणप्रद वायु-स्पर्श से मृतदेह के शिथिलप्राय अस्थि मांस तक में प्राण-संचार हो रहा है। जड़ता धीरे धीरे दूर हो रही है। जो अंधे हैं, वे ही देख नहीं सकते और जो विकृतबुद्धि हैं वे ही समझ नहीं सकते कि हमारी मातृभूमि अपनी गंभीर निद्रा से अब जाग रहीं है। अब कोई उसे रोक नहीं सकता। अब यह फिर सो भी नही सकती। कोई बाह्य शक्ति इस समय इसे दबा नहीं सकती क्योंकि यह असाधारण शक्ति का देश अब जागकर खड़ा हो रहा है।[१३]

उनके (श्रीरामकृष्णदेव के) जन्म की तिथि से ही सत्ययुग का आरंभ हुआ है। इसलिए अब सब प्रकार के भेदों का अंत है और सब लोग चांडालसहित उस दैवी प्रेम के भागी होंगे। पुरुष और स्त्री, धनी और दरिद्र, शिक्षित और अशिक्षित, ब्राह्मण और चांडाल – इन सब भेद-भावों को समूल नष्ट करने के लिए उनका जीवन व्यतीत हुआ था। वे शांति के दूत थे – हिंदू और मुसलमानों का भेद और हिंदू और ईसाइयों का भेद – सब भूतकालीन हो गये हैं। मान-प्रतिष्ठा के लिए जो झगड़े होते थे, वे सब अब दूसरे युग से संबंधित हैं। इस सत्य युग में श्रीरामकृष्ण के प्रेम की विशाल लहर ने सब को एक कर दिया है।[१४] श्रीरामकृष्ण के जैसा पूर्ण चरित्र कभी किसी महापुरुष का नहीं हुआ, इसलिए हमें चाहिए कि हम उन्हीं को केंद्र बनाकर डट जायँ। हाँ, हर एक आदमी उनको अपने अपने ढंग से ग्रहण करे, इसमें कोई रुकावट नहीं डालनी चाहिए। चाहे कोई उन्हें ईश्वर माने, चाहे परित्राता या आचार्य, या आदर्श पुरुष अथवा महापुरुष – जो जैसा चाहे, वह उन्हें उसी ढंग से समझे।[१५]

यदि ऐसा राज्य स्थापित करना संभव हो जिसमें ब्राह्मण युग का ज्ञान,

क्षत्रिय युग की सभ्यता, वैश्य युग का प्रचारभाव और शूद्र युग की समानता रखी जा सके – उनके दोषों को त्याग कर – तो वह आदर्श राज्य होगा।[१६] मेरा विश्वास है कि जब एक जाति, एक वेद तथा शांति एवं एकता होगी, तभी सत्य युग (स्वर्ण युग) आयेगा। सत्ययुग का यह विचार ही भारत को पुनः जीवन प्रदान करेगा। विश्वास रखो।[१७] ... बच्चो, उठो, काम में लग जाओ। यदि तुम यह कर सके, तो मुझे आशा है कि भविष्य में हम बहुत कुछ कर सकेंगे। ... चिरकाल तक सनातन धर्म का डंका बजेगा। ... उठो, उठो, मेरे बच्चो! हमारी विजय निश्चित है।[१८]

एक नवीन भारत निकल पड़े। निकले हल पकड़कर, किसानों की कुटी भेदकर, मछुआ, माली, मोची, मेहतरों की झोपड़ीयों से। निकल पड़े बनियों की दुकानों से, भुजवा के भाड़ के पास से, कारखाने से, हाट से, बाजार से! निकले झाड़ियों, जंगलों, पहाड़ों, पर्वतों से! ... अतीत के कंकाल-समूह! – यही है तुम्हारे सामने तुम्हारा उत्तराधिकारी भावी भारत। वे तुम्हारी रत्नपेटिकाएँ, तुम्हारी मणि की अँगूठियाँ – फेंक दो इनके बीच; जितना शीघ्र फेंक सको, फेंक दो; और तुम हवा में विलीन हो जाओ, अदृश्य हो जाओ, सिर्फ कान खड़े रखो। तुम ज्योंही विलीन होगे, उसी वक्त सुनोगे, कोटिजीमूतस्यंदिनी, त्रैलोक्यकंपनकारिणी भावी भारत की उद्‌बोधनध्वनि 'वाह गुरु की फतह!'[१९]

उसे जगाओ, और पहले की अपेक्षा और भी गौरवमंडित और अभिनव शक्तिशाली बनाकर भक्तिभाव से उसे उसके चिरंतन सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दो।[२०]

□□□